ISSN 2455-0310
3.1

LISTED UNDER
UGC APPROVED LIST OF JOURNALS

TRANSFRAME

A Bilingual, Bimonthly Multidisciplinary International e-Journal

VOLUME 3, ISSUE 1

SEPTEMBER-OCTOBER 2017

TRANSFRAME
Multidisciplinary International e-Journal
VOLUME 3 ISSUE 1
2017

CLICK ON ARTICLES TO READ

4 संचार प्रक्रिया एवं भाषा और अनुवाद का अंतर्संबंध- डॉ. जगदीश शर्मा

16 माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी छात्रों के बीच नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन - रोहित कुमार

21 अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा और हिंदी सिनेमा - प्रवीण सिंह

24 फ़िल्म अनुवाद -प्रवीण सिंह, मेघा आचार्य

31 मराठी क्रियारूप विश्लेषक प्रणाली का विकास - प्रफुल्ल भगवान मेश्राम

38 TRANSLATION AS A BRIDGE IN THE 21ST CENTURY - Yugeshwar Sah

45 सिनेमा में दलित प्रश्न और 'फेंड्री – मेघा

50 जनपद भिण्ड (म0प्र0) का अपवाह तन्त्र : एक भौगोलिक अध्ययन - डॉ0 पुष्पहास पाण्डेय, शिवम् वर्मा

55 हिंदी सिनेमा के सामाजिक सरोकार- आशीष कुमार

61 YOGA DIPLOMACY AS INDIA'S SOFT POWER : PROJECTING THE 'IDEA OF INDIA'- Dr. Sanjeev Kumar Tiwari

Editor's Desk

Now TRANSFRAME is entering in its third years of journey. With this issue TRANSFRAME is now UGC Approved, Expert Peer Reviewed, open Access International e-Journal. We made some changes in its format and content. With new articles there are some selected research papers and articles from previous issues .

On behalf of TRANSFRAME, we hope to build a life long association with you and expect your continuous support. We hope to receive your contribution in terms of paper submissions and subscriptions as well. It will be our pleasure to collaborate with you for future endeavors and promotion of the initiatives carried out by TRANSFRAME.

Thanks & Regards

TRANSFRAME
Multidisciplinary International e-

UGC Approved, Expert Peer Reviewed, open Access e-Journal

EDITOR IN CHIEF

Megha Acharya

PUBLISHER

Praveen Singh

T +91 9763706428

E-mail : contact@transframe.in

Web:

www.transframe.in

Designed By TRANSFRAME www.transframe.in

©All Rights Reserved

The publisher regret that they can not accept liability for error or ommisions contained in this publication, however caused. The opinions and views contained in this publication are not necessarily those of the publishers or editors. No part of this publication or any part of the contents there of may be reproduced or transmitted in any form without the permission of publishers in writing. An exemtion is hereby granted for extracts used for the purpose of fair review.

GO DIGITAL, GO PAPERLESS, SAVE TREES, SAVE WATER

संचार प्रक्रिया एवं भाषा और अनुवाद का अंतर्संबंध

संचार शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ उस सूक्ष्म प्रक्रिया को इंगित करता है जिसे भारतीय परम्परा के ध्वनि आचार्यों ने रस–आस्वादन अथवा चर्वण कहा है। वास्तव में संचरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया इतनी अंतरंग और हृदयग्राही है कि सफल संचरण से प्राणिमात्र न केवल अपने परिवेश से साधारणीकृत हो जाता है अपितु वह एक उद्वेग से रोमांचित भी हो उठता है। जनसंचार की वर्तमान अवधारणा भी ध्वनि आचार्यों द्वारा अभिप्रेत साधारणीकरण अथवा सामान्यीकरण का ही एक विस्तृत स्वरूप है जिसके माध्यम से शब्द व्यापक परिवेश में संचरित होकर व्यापक अंतराल पर स्थित सम्पूर्ण विशाल जन–समुदाय को अपनी आनंदलहरी अथवा अर्थ–ग्राहकता में निमज्जित कर देता है। संभवतः यह सर्व–दिक् प्रसारित सन्देश का ही आस्वादन है जो आस्वादनोपरांत भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी एवं व्याभिचारी भावों जैसे विभिन्न चरणों में प्रसृत होकर स्थायी भाव अर्थरूप में प्रसृत सन्देश बन जाता है। **भरत मुनि** के नाट्यशास्त्र में इस सूक्ष्म संचरण की विस्तृत व्याख्या प्राप्त होती है। आधुनिक पश्चिमी विचारधारा का लातिनी मूल का शब्द कम्युनिस (communis) भी इसी से अनुप्राणित है जिसका अर्थ है 'संचार' अर्थात अनुभव का सार्वभौम अधिग्रहण'। यही तत्त्व अंग्रेजी शब्द कम्युनिकेशन के मूल में है। **मैगीनसन** ने भी इसे समानुभूति की प्रक्रिया अथवा श्रृंखला कहा जो एक 'संस्था–समाज' के विस्तारित सदस्यों को ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तक जोड़ती है।

हिंदी में हर 22 मिनट में एक बिगड़े हुए रूपक शब्द को मीडिया प्रसारित कर रहा है। यह भले ही आज प्रीतिकर लगे परंतु कहीं भाषा का यह कल्पना प्रयोजनमूलक स्वरूप अपनी व्याकरणी निष्ठा से दूर जा रहा है। संचार-माध्यमों की भाषा में भले ही प्रयोजनमूलकता के कितने ही पुट उसमें क्यों न हों, प्रकार्यात्मक रूप में भी भाषाई मानदंड की अपेक्षा तो होती ही है।

संचार शब्द के जिस अर्थ से हम आज परिचित हैं वह वस्तुतः उस सन्दर्भ में है जिसमें हम उसे संवाद के अर्थ में समझते हैं। यह किसी सीमा तक अनिर्वचनीय या भावप्रवणता की प्रक्रिया भी है जो समाज में संपन्न होती है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जो 'मॉस कम्युनिकेशन' शब्द का प्रयोग होता है वह साधारणीकरण या commonest अथवा Generalization या Univerlisation का ही पर्याय है जो प्राचीनकाल से भारतीय समाज में औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से अनेक विधाओं में घटित होता आया है।

विश्वविख्यात विज्ञापन एजेंसी के स्वामी **विलियम मास्तिलर** (1981) का मत है कि संचार केवल शब्द नहीं है, यह चित्र या नानाविध संकेत–मात्र अथवा गणितीय संकेत या विज्ञान प्रतिरूप भी नहीं है अपितु यह विशुद्ध रूप से मानवीय प्रयास है। जिससे शून्यता से निकलकर अपने संवेग बांटने और उन्हें आगे बढ़ाने का कार्य किया किया जाता है। आज हम संचार की परिकल्पना उस सन्दर्भ में ही करते हैं जिसमें 'विश्वग्राम' या 'सार्वभौम' संदेश हमारे दैनंदिन जीवन की अनिवार्य चर्या है। हम वस्तुतः संचार युग में जी रहे है, आज "संचार" शक्ति या विकास की परिभाषाओं को चरितार्थ करता नजर आता है। संचार ही परिवर्तन की भूमिका भी निर्मित और निर्धारित करता है। बीसवीं सदी में विश्व के परिदृश्य में हुए बदलाव इस कथन की पुष्टि करते है कि संचार एक विकासात्मक नियामक है जो सतत बदलाव या अग्रोन्मुखता की ओर प्रेरित करता है। **एवरेस्ट ऍम रोजर्स** का विचार है कि जहाँ–जहाँ भी बदलाव आया है वहाँ–वहाँ संचार की भूमिका विशिष्ट सन्दर्भों में महत्वपूर्ण रही है। अभिप्राय यह कि वैश्विक स्तर पर उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में राजनैतिक, आर्थिक और भौगोलिक बदलाव संचार प्रक्रिया के परिणाम थे। हाल ही की घटनाओं का भी अगर विश्लेषण किया जाए तो प्रतीत होगा की *स्प्रिंग और जास्मिन* जैसे महत्वपूर्ण राजनैतिक एवं रणनीतिक बदलाव–क्रांति के सूत्रपात के आधार में वर्तमान युग की सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका रही है। जनसंचार की बहु–आयामी भूमिका में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व रणनीतिक जैसे अनेक आयाम शामिल हैं।

डॉ. जगदीश शर्मा

एसोशिएट प्रोफेसर
अनुवाद अध्ययन
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी
नई दिल्ली 110068

'जनसंचार, जन एवं संचार दो शब्दों का एक युग्म है जिसके बहुआयामी अर्थ है। शार्ट आक्स्फोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार "जन" शब्द सकारात्मक व नकारात्मक, दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है। भीड़, सैलाब या अनियंत्रित (जन) समूह आदि नकारात्मक भाव व्यक्त करते हैं वहीं समाजिक समूह के रूप में यह सकारात्मक अर्थ का द्योतक है। सामूहिक इच्छा, शांति और लक्ष्य प्राप्ति के उद्देश्य हेतु यह सकारात्मक भाव देता है। इसमें व्यष्टि का लोप होकर केवल समष्टि ही बन जाना लक्ष्य है। 'संचार' शब्द से अभिप्राय है – स्वेच्छा व परेच्छा से संकल्प–ज्ञान भाव आदि को विभिन्न माध्यमों द्वारा प्रसारित, प्रचारित व बांटने आदि की प्रक्रिया। विल्वर श्राम व वीवर के अनुसार संचार उन सभी प्रक्रियाओं का सामूहिक स्वरूप है जिनके माध्यम से एक सोच दूसरों को प्रभावित करती है, जबकि शाचस्टर का कथन है कि संचार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से शक्ति की सत्ता प्रदर्शित की जाती है। यह निश्चित है कि संचार में संकेत, शब्द, लिपि, चित्र, आरेख अदि सभी का प्रयोग किया जाता है। संचार एक ऐसी प्रक्रिया है जो सामान्यतः व्यापक अर्थ में ही प्रयुक्त होती है तथा इसमें एक मस्तिष्क दूसरे मस्तिष्क से प्रभावित होता है। **जे.पाल लीगन्स** का मत है कि संचार के माध्यम से ऐसे सभी विचारों, तथ्यों, अनुभवों अथवा प्रभावों का विनिमय किया जाता है जिससे प्रत्येक प्राप्तकर्ता सन्देश का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है। वास्तव में यह संप्रेषक व प्रापक के मध्य किसी सन्देश विशेष या सन्देश श्रृंखला प्राप्त करने के लिए की गयी सम्मिलित क्रिया है। **लुमिक बगल** के अनुसार संचार एक प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक व्यवस्था के द्वारा सूचना, निर्णय और निर्देश दिए जाते हैं और यह एक मार्ग है जिसमें ज्ञान, विचारों और दृष्टिकोणों को निर्मित अथवा परिवर्तित किया जाना निहित रहता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जनसंचार एक ऐसी क्रिया है जिसके माध्यम से अभिप्रेत अथवा इंटेंट (ज्ञान एव सूचना आदि) का संचार होता है। इससे व्यक्तियों, समाजों और राष्ट्रों के मध्य आपसी सम्बन्ध कायम होते हैं। वस्तुतः यह संस्कृति, हितों व विशिष्ट जानकारियों और आपसी हितों के सभो उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की गयी एक प्रक्रिया है। वर्तमान विश्व में सूचना तकनीक की अभूतपूर्व क्रांति ने संचार की प्रक्रिया को महाक्रांति के रूप में बाजार व ज्ञान के प्रसार को एक तरह से आप्लावित कर दिया है और यह दैनिक जन–जीवन का अनिवार्य उपांग बन गया है। किसी सीमा तक जनसंचार की उत्तमता आज आधुनिकता या विकासशीलता का भी पर्याय है।

जनसंचार–मॉस संस्कृति की संकल्पना:

अधिकाश यूरोपियाई व पश्चिमी देशों की अपेक्षा भारत जैसे बहुसांस्कृतिक व बहुभाषिक देश में मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार working proletariat जैसी संस्कृति अर्थात मॉस संस्कृति नहीं हो सकती है। वास्तविकता यह है कि अपनी ऐतिहासिक, संस्कृतिक, भाषिक और धार्मिक पृष्ठभूमि के अनुरूप हम आज भी अपनी नगरीय संस्कृति की अपेक्षा पारम्परिक भारतीय ग्रामीण जीवन–शैली से ओत–प्रोत हैं और यह ग्राम्य भारती ही भारतीय जन–मानस की द्योतक है। जन संचार को परिभाषित करते **चार्ल्स राईट** (1983) का कहना है यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक विशाल विविधतापूर्ण परोक्ष श्रोता व दर्शक समूह रहता है, जबकि mass शब्द की समाजशास्त्रीय परिभाषा देते हुए **हरबर्ट ब्लूमर** (1946) का मत है कि 'मास' शब्द चार लक्षणों से सूचित होता है, इसमें यह कि 'मास' के सभी प्रतिभागी जीवन के सभी संवर्गों से होते है (from all walks of life) , वे परोक्ष एकल प्राणी होते है (anonymous individuals) , उनमें आपस में अति–न्यून संवाद या अन्तःक्रिया होती है (little interaction) तथा वे सब आपस में अनजान रूप में संबद्ध होते हैं (loosely organized)। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि 'मास' से तात्पर्य एक विशाल संचार लक्षित वर्ग से है जो अलग–अलग सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से होता है और उनके सरोकार व्यक्तिनिष्ठ होते हैं। भाव यह कि वे अपनी अपनी आवश्यकतानुसार संचार की अपेक्षा रखते है।

मॉस कम्युनिकेशन या जनसंचार का सामान्य अभिप्राय जन–मानस तक किसी माध्यम का उपयोग कर सूचना, शिक्षण व मनोरंजन को पंहुचाने से है। इसे **डेनियल लर्नर** के शब्दों में इसे mobilite multiplier कहा गया है जबकि विल्वर श्राम ने इसे magic multiples का नाम दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में सुप्रसिद्ध भारतीय संचार विशेषज्ञ केवल जी. कुमार (1981) का यह वक्तव्य महत्वपूर्ण है कि जन–माध्यम सूचना, शिक्षण व मनोरंजन को पंहुचाने में मात्र प्रक्रियात्मक तत्त्व हैं, ये स्वयं में संचार नहीं हैं। अभिप्राय यह कि संचार तो सामग्री अथवा कथ्य या सन्देश का ही होगा। माध्यम तो केवल सुगमक अथवा catalyst या facilitator हो सकता है। डी. एस. मेहता (1979) का विचार है कि जनसंचार का सामान्य तात्पर्य है – सूचना, विचार व मनोरंजन का आधुनिक संचार–माध्यमों (यथा रेडियो, टेलेविजन फिल्म, पत्र पत्रिकाओं, विज्ञापन) अथवा पारंपरिक माध्यमों (जैसे नृत्य, नाटक, व पुतलिका नृत्य आदि) द्वारा प्रसार–संचार। एक और विशेषज्ञ **बी. कुप्पुस्वामी** (1976 "वर्तमान औद्योगिक समाज में जन–सन्देश के प्रौद्योगिकीय एवं संस्थागत आधार पर व्यापक उत्पादन एवं विस्तारण को ही जनसंचार मानते हैं"। **जेनिस मेक्निल** मानते हैं कि जन. संचार को परिभाषित करना अति दुष्कर है क्योंकि यह समाज, स्थान और सन्दर्भ में समाज विशेष की अपेक्षाओं और परिवादों से प्रभावित होता है। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि जनसंचार अपेक्षाकृत व्यापक, बहुलक्षित तथा सैद्धांतिक और परोक्ष रूप से व्यापक लक्ष्य समूह को संबोधित होता है। यह संस्था, माध्यम, सन्देश, लक्षित तथा अपेक्षित प्रभावों जैसे कारकों की सम्मिश्रित प्रक्रिया है जिनके माध्यम से व्यक्तियों, संस्थाओं और राष्ट्रों के मध्य व्यक्ति, भाईचारा सहयोग एवं विकास संबंधी बदलाव लाने का प्रयास निहित रहता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जनसंचार एक प्रक्रिया है जो

अपने निहित उद्देश्य अथवा लक्ष्य प्राप्ति हेतु आधुनिक, परंपरागत और विस्तारित मीडिया द्वारा अपने मंतव्य अनुकूलन हेतु सन्देश प्रस्तुति करती है। **पीटर लिटल** भी मानते हैं कि संचार एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सूचना व्यक्तियों व संगठनों के बीच संप्रेषित की जाती है और इससे आपसी समझ बढ़ती है।

जनसंचार के अप्रतिम लक्षणों में उसका लाखों–करोड़ों लोगों को आपसी चर्चा, विचार विमर्श, अनुभव बांटने व प्रतिक्रिया द्वारा विचार प्रक्रिया में शामिल करना अति– महत्वपूर्ण है। बीसवीं शताब्दी में प्रौद्योगिकी में हुए आविष्कारों ने इस प्रक्रिया को एक यथार्थ का रूप दे दिया है। तथापि जनसंचार के मुख्य बिन्दुओं पर चर्चा करते हुए डेनिस मेक्विल ने कुछ क्रमबद्ध मुद्दों की प्रस्तावना रखी है। प्रथमतः, वे कहते हैं, जनसंचार ज्ञान सूचना, विचार व संस्कृति के निर्माण और विस्तारण से संबंधित है। दूसरे यह कि पूरे समाज व प्रतिभागी घटकों को आपस में जुडने तथा प्रतिक्रिया देने हेतु एक माध्यम प्रदान करता है। तीसरे–यह माध्यम पूर्णतः जनांकित है अर्थात यह जन–मानस के स्तर पर घटित होता है, चौथे इस माध्यम में प्रतिभागिता पूर्णतः स्वैच्छिक होती है। अर्थात यदि कोई व्यक्ति इसमें भाग लेना, इसे पढ़ना, सुनना या देखना नहीं चाहता है तो वह ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र है। और पांचवां यह महत्वपूर्ण पक्ष है कि जनसंचार अनिवार्यतः अपने कार्य, तकनीकी गुणों और वित्तापेक्षा के करण उद्योग एवं वित्त से विलग्न नहीं है। अंततः यह मीडिया प्रत्येक समाज की विधि–व्यवस्था एवं वैचारिक–वैधता के कारण किसी न किसी रूप में राज्य कि सत्ता से भी संबद्ध होता है। **वाटसन (2003**) अध्ययन की भाषा के क्रम में मानते हैं कि जनसंचार वर्तमान समय का सबसे प्रभावशाली विमर्श है, अतः सत्ता के उपयोग के रूप में सत्ताधारियों द्वारा संस्कृतियों व राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रोता।दर्शकों की अवधारणा को प्रतिकूल रूप में प्रभावित करने में **जीन बौद्रिलार्द** के तथाकथित blizzard of signifiers अर्थ निहितता के झंजावात के रूप में जन संचार के प्रति–प्रभावों की गहन संवीक्षा जारी है।

जनसंचार परोक्ष एक प्रकार से परोक्ष सन्देश (anonymous) होता है अतः सम्प्रेषक व प्राप्तकर्ता के मध्य अंतराल के कारण यह सन्देश व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ स्वरूप में सम्प्रेषण करता है जो एक प्रकार से To whom it may concern जैसा ही होता है, अर्थात लक्षित स्वयं अपने उद्देश्य को असंख्य संदेशों में से पहचानकर केवल अपने उपभोग या उपयोग को ग्रहण करता है।

जनसंचार एक तात्कालिक उद्देश्यपरक, सुनियोजित एवं सुगठित प्रक्रिया होती है। तत्काल प्रतिक्रिया अथवा प्रतिपुष्टि प्राप्त हो, यह आवश्यक नहीं क्योंकि प्रतिपुष्टि केवल सांस्थानिक रूप से भारी निवेश और ढाँचे के सहयोग से ही प्राप्त की जा सकती है इसके लिए श्रोता, दर्शक, पाठक सर्वेक्षण ब्यूरो या संरचित परियोजना आदि की व्यवस्था से ही प्रतिपुष्टि प्राप्त की जा सकती है। अतः जनसंचार के प्रभावों व उसके सामाजिक, आर्थिक और व्यावसायिक महत्त्व के मूल्यांकन हेतु विधिवत श्रोता अनुसंधान की आवश्कयता बनी रहती है। उन्नीसवीं, बीसवीं तथा इक्कीसवीं शताब्दी में विश्व परिदृश्य पर भौगोलिक, वैचारिक और राजनैतिक परिवर्तनों ने जिस प्रकार अपने प्रभाव से नए स्वरूप व मूल्यों को जन्म दिया है उससे सिद्ध हो जाता है कि जनसंचार–माध्यम परिवर्तन के लिए अपरिहार्य ही नहीं अपितु वे इस प्रकार के बदलाव को ठोस आधार प्रदान कर नए समाज की रचना करने में समर्थ है। जनसंचार आज सही मायनो में सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में समान्तर शक्ति के रूप में स्थापित हो चुका है। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे ने जनसंचार को सम्पूर्ण समाज, व्यवस्था और तकनालाजी के पूरक के रूप में देखा है। अन्य चिन्तक भी सामाजिक परिवर्तन में इसकी भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं। भारतीय परिदृश्य में भी संचार–माध्यमों ने जन–मानस को प्रभावित करने की सुदृढ़ क्षमता प्राप्त कर ली है। आधुनिक युग में संचार–माध्यम एक संदेशवाहक के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे है।

संचार प्रक्रिया:

संचार प्रक्रिया मूलतः एक से दूसरों तक सूचना, संकल्प, अभिवृत्ति आदि को पंहुचाने की गतिविधि है। **चार्ल्स कुले** के अनुसार यह मानवीय संबंधों के होने, बनने आदि जो मानसिक संकेत दूरी को कम करने हेतु विकसित होते हैं और जो भविष्य में भी बने रहते है यह उनकी व्यवस्था है। अर्थात संचार एक मनोभाषिक गतिविधि भी है। अतः संचार व्यवस्था को समझाने में दो मुख्य पहलू महत्वपूर्ण हैं, पहला – यांत्रिक साधनों की पर्याप्त समझबूझय और दूसरा सूचना प्राप्ति, प्रभावकर्म, प्रोत्साहन, मजोरंजन, विश्वात्मकता आदि, जैसे दैनंदिन व्यवहार इसका उपयोग (यानि ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग जिसमें सन्देश का स्रोत, सन्देश और लक्ष्य प्रमुख हैं)। संचार–माध्यमों की भाषा संबंधी आवश्यकताओं पर ध्यान देने से पूर्व संचार माध्यमों की प्रकृति पर चर्चा करना संगत होगा। सभी संचार–माध्यमों को राजनीतिक विज्ञानी **हेराल्ड लासवेल (1948**) के पदक्रम को जानना लाभप्रद होगा।लासवेल ने कहा कि सम्प्रेषण को पांच प्रश्नों द्वारा परखा हा सकता है, ये हैं' *कौन कहता है, क्या कहता* (कहता है), *किस माध्यम से* (कहता है), *किस को* (कहता है) और *किस प्रभाव से* (कहता है)। यह जानना महत्वपूर्ण है कि श्रोता कौन है, सन्देश क्या है, माध्यम कौन सा है, लक्ष्य की प्रकृति क्या है और कथ्य संदेश कितना प्रभावी बनाया जाना अपेक्षित है। स्वभाविक है भाषा प्रत्येक चरण पर प्रभाव–केंद्रीय बिंदु बनी रहती है। **न्यूसम और बोलेर्ट (1988)** के अनुसार ।मीडिया लेखन के लिए सदैव सन्देश, माध्यम और श्रोता तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक हैं। ये तीनों ही समस्त संचार प्रक्रिया के केंद्र में रहते हैं।

संचार व भाषा:

मानव सभ्यता के प्राचीनतम आविष्कारों में से भाषा का प्रादुर्भाव एक महत्वपूर्ण घटना है। भाषा या भाष् कथन–वचन के अनेक रूप हैं। सभ्यता के प्रारम्भ में विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ अभिमत को प्रकट करने भाषा प्रयोग में लायी जाती थीं। इसी कारण मेघों की गर्जना, मेघों का बरसना, बिजली की चमक के साथ गर्जना आदि विशेष प्राकृतिक ध्वनियाँ भय, सौख्य और आक्रोश–आवेगादि भाव व्यक्त करने वाली ध्वनियाँ आज भी प्रयुक्त होती हैं। इसी प्रकार खग–कलरव, कोलाहल तथा मयूरादि कि पीहू–पीहू व कोयल की कूक जैसी मधुररव ध्वनियाँ आज भी बनी हुयी हैं। ज्यों–ज्यों मानव–सभ्यता का विकास हुआ मनुष्य ने अपने हर्ष, विषाद, संवेग, आक्रोश और तुष्टि आदि की अभिव्यक्ति हेतु इन्हीं प्राकृतिक ध्वनियों को अपना लिया। यहाँ तक कि इन सभी भावों व उद्वेगों को भित्ति चित्रों के रूप में उकेरा जिनके माध्यम से विभिन्न मानवीय भावों (moods) को समझा गया। कालांतर में यह काल विशिष्ट के चिंतन, विश्वास और परम्पराओं का सम्प्रेषण करने में समर्थ हो सका। यहाँ तक कि प्राचीन मंदिरों, गुफाओं व शिलालेखों में महाकाव्यों व ऐतिहासिक गाथाओं को चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया गया। आस्ट्रेलियाई महाद्वीप में एब्रोयेजिनल गुफाओं, हडप्पा व मोहनजोदडो में खननोपरांत प्राप्त अवशेष, अजंता एलोरा गुफाओं के भितिचित्र तथा खजुराहो में लास्य गीतिकाओं के चित्रण और कम्बोडिया में **खमेर रूज** द्वारा निर्मित **अंगकोर वाट** मंदिरों में विशिष्ट आकृतियों के माध्यम से अनेक ध ार्मिक और ऐतिहासिक गाथाओं का वर्णन प्राप्त होता है। यही आरेखण शनैः शनैः आगे चलकर प्रयोजन लिपि के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए। विश्व की अनेक भाषाएँ आज भी इन आरेखण चिन्हों के समीप हैं, विशेष रूप से चीनी व जापानी भाषाएँ। वस्तुतः यह सम्प्रेषण की प्रारंभिक अवस्था थी।

मानव ने अब निश्चित रूप से प्रगति कर प्रौद्योगिकी के प्रयोग से सम्प्रेषण के अनेक उपाय व भाषा वैविध्य खोज लिए हैं और आज हम अत्याधुनिक संचार युग में चरम रूप से विकसित भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। तथापि विगत तीन–चार दशकों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी में हुए विकास के कारण संचार–माध्यमों में भाषा को लेकर गंभीर प्रश्न उभर कर सामने आये हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि बहुआयामी जनसंचार के कारण भाषायी संकट उत्पन्न हो गया है। चूँकि संचार के माध्यमों में फिल्में, टेलीविजन, रेडियो तथा समाचार पत्र प्रमुख हैं और भाषा की प्रकृति परिवत. ंनशील है अतः इन माध्यमों में भी भाषाई परिवर्तन स्वाभाविक रूप से परिलक्षित हो रहे हैं। नई मीडिया–भाषा आज प्रयोग में है। इसका स्वरूप कैसा है यह महत्वपूर्ण प्रश्न है। हम जानते हैं कि रेडियो की भाषा में जो सरलता सहजता और अपनत्व होता था आज उसमें गति व *फास्ट*–जीवन के तत्त्व मिल कर उसे एक नया स्वरूप उसे दे रहे है। रेडियो कार्यक्रम विविध श्रोता वर्गों के लिए होते हैं। युवाओं, ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं के लिये, स्वाथ्य, खेल, विज्ञान व साहित्यिक सभी प्रकार के कार्यक्रमों में आधुनिक तकनीक के प्रयोग बढ़ रहे हैं तथा दैनिक जीवन की गति एवं तेजी उसमें भी देखी जा रही है। रोजगार, धनार्जन, और आपसी रिश्तों में नए आयाम आज के रेडियो की भाषा को बदल रहे है। उसमें पारंपरिक भाषिक मूल्य तथा आंचलिकता आज की नई पीढ़ी की मोबिल जिंदगी के आयामों से बदल रही और सामाजिक सरोकार की वस्तु होने के कारण भाषा में ये सभी तत्त्व दिखायी दे रहे हैं। टेलीविजन की भाषा को लेकर भी मीडिया एवं भाषा विद्वान इस गंभीर चर्चा में है कि उसकी भाषा का स्वरूप कैसा होना चाहिए। केवल पश्चिमी अनुकरण ही भाषा की अंधी दौड का कारण है अथवा आधुनिकता के नाम पर अंग्रेजी का प्रयोग हिंदी पर लाद कर मीडिया की किस भाषा का निर्माण किया जा रहा है, यह एक गंभीर प्रश्न है। क्षेत्रीय भाषाओँ को प्रसार माध्यमों में क्या स्थान मिलना चाहिए? विकासशील और एशियाई महाद्वीप के देशों के प्रसारण माध्यमों में भाषा का क्या प्रारूप होना चाहिए? क्षेत्रीय भाषाओं में संचार लोगों को किस प्रकार संयोजित करता है तथा वह किस हद तक आम जन को प्रभावित कर रहा है? आज यह जानना आवश्यक है कि संचार माध्यम बेहतर संगीत और दृश्य श्रव्य सामग्री से धारदार व प्रभावशाली बन रहा है। परन्तु भारत में कुल संचार का आधे से अधिक अंग्रेजी में हो रहा है। यह किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है यह विचारणीय मुद्दा है। संचार आज ऐसी प्रक्रिया बन चुका है जिसके माध्यम से विश्व भौगोलिक सीमाओं से निकलकर एक परिवार या सिकुड़ता परिवार बन गया है। इसमें भाषा का सम्प्रेषण तत्त्व अति–महत्वपूर्ण है। रेडियो ने जहाँ भाषा के रस का सरोवर रूप अपनाया है वहीँ एक अन्य विधा ने उसे स्क्रीन–परदे पर लिखकर परोसा। सम्पूर्ण विश्व में सिनेमा ने भाषा को एक नई तकनीक और मुहावरे के साथ प्रस्तुत किया। स्क्रीन की परिकल्पना भाषा की उन्नति का क्रांतिकारी चरण था और इसी का अत्याधुनिक रूप हमारे सामने टेलीविजन के रूप में आज है, एक नई बानगी है जो वास्तव नए भाषायी रंगों का एक इन्द्रधनुष बनाता है। रेडियो, टेलीविजन और वर्तमान न्यू–मीडिया के तथाकथित signifier के झंजावात के आगे दर्शक और श्रोता पर असंख्य निहितार्थ संचार का सैलाब है, उसमें से वह मूल के साथ गौण तथा प्रक्रिया में संबद्ध अर्थों को भी ग्रहण करता है। अतः इस मूल तथ गौण एवं संबद्ध अर्थ के प्रति अनुवाद प्रक्रिया में सचेतता आवश्यक है।

जनसंचार के क्षेत्र:

जनसंचार के ही अंतर्गत भाषा के प्रयोग का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है –पत्र–मुद्रित अर्थात प्रिंट मीडिया। समाचार पत्रों को कुछ पत्रकार शुद्धतावादी नजरिये से चलाने का प्रयत्न करते है। यह सच है कि पत्र–अर्थात प्रिंट संचार मूलतः औपचारिक भाषा का प्रयोग करता है, जिसमें प्रचलित शब्दावली का प्रयोग निहित रहता है। दुर्भाग्य से पूरे भारतीय प्रिंट मीडिया पर अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। शैली भी कमोबेश वही रहती है। यह सत्य है कि आज भी

अधिकांश समाचार सामग्री अंग्रेजी एजेंसियों से ही प्राप्त होती है, तथापि हिंदी में समाचारों की शैली व भाषा हिंदी भाषी समाज और भाषाई मुहावरे की होनी चाहिए। भाषा जब सम्प्रेषण बिंदु पर पहुँच कर यदि अपने व्याकरणीय तरीके से शून्य हो जाये तो वह माध्यम नहीं रह जाती है। स्क्रीन की भाषा के साथ अनेक व्याकरणिक प्रयोग किये जाते रहे हैं क्योंकि इसे देखा और सुना जा सकता है, उसे ध्वनि प्रभावों और दृश्यावलियों से और गहरे में मथित किया जा सकता है, फिर भी भाषा को अपना व्याकरणी–मानक–स्वरूप और मुहावरा तो बचाए रखना ही चाहिए। संचार माध्यमों में भाषा के लिए यह ऊहापोह का दौर भी है। पिजिन और क्रियोल हिंदी के अप–स्वरूप *हिंगलिश* के स्वरूप में देखने को मिल रहे हैं।

संचार माध्यमों, विशेषकर प्रसारण की भाषा में सजीवता तथा सजगता, भाषा का आकार प्रकार तथा प्रकृति भाषा लक्षणों को अपने आप में समेटती है। उसमें हमारा परिवार, गली–मोहल्ला, आदतें और अतीत तथा वर्तमान दि खाई देता है। और इसीलिए यह टकसाली रूप अपनाकर कई बार व्याकरण का अतिक्रमण करती प्रतीत होती होती है, विशेषकर विज्ञापनों की भाषा में तो व्याकरण के नियम टूट ही जाते है, भाव और कथ्य का धारदार व सर्वग्राह्य होना भाषा का उत्तम मानक होता है। यही आपसी संवाद की भाषा होती है। विज्ञापनों के अनुवाद में अनुवादक की सर्जनात्मक प्रतिभा की पूरी परीक्षा होती है क्योंकि इस प्रक्रिया में अनुवादक को भाषा के कई स्तरों से गुजरना पड़ता है। कौशलयुक्त अनुवादक मूल विज्ञापन जैसी रोचकता को तो बनाये ही रखता है, परन्तु कभी–कभी अपने बेहतर प्रभाव से यह अनूदित विज्ञापन अधिक सुन्दर, सर्जनात्मक और साहित्यिक भी बन जाता है। Thums up: Taste the thunder–थम्स उप, तूफानी ठंडा, और beautiful, beautiful fresca –सुन्दर, सुहाना फ्रेस्का, go on guess my age –बोलो बोलो क्या है मेरी उम्र? (गोस्वामी पृ 38) यहाँ taste, beautifu, go on और guess जैसे शब्दों को पूर्णतया बदल कर हृदयग्राही लय, भाव तथा अर्थ में परिणत कर दिया गया है।

संचार–माध्यमों की भाषा साहित्यिक अथवा तकनीकी लेखन की भाषा से इसलिए भी भिन्न होती है कि यह हमें आस पास से जोडती है, वास्तव में भाषा में प्रयोजनमूलक तत्त्व का होना नितांत अनिवार्य है। इसे बनाये रखना अत्यंतावश्यक है। भाषा में प्रयोजनमूलकता के कारण कई बार व्याकरणीय मानकीकरण मापदंड निष्क्रिय होते नजर आते हैं परन्तु इससे भाषा अपने तत्व को खो भी देती है और एक नए स्वरूप में परिवर्तित हो जाती है।

संचार–माध्यमों के रूप में प्रिंट माध्यमों की भाषा की सशक्तता की महत्ता है, समाचारों का शीर्षक, अक्सर भाषा के सशक्त सम्प्रेषण का उत्तम उदाहरण है, परन्तु उसका विस्तार मानकीकृत भाषा का भी उदहारण है, हालाँकि प्रसारण माध्यमों में भाषा श्रोता, दर्शक और पाठक या लक्ष्य को अपनी ओर आकर्षित करती है तथापि आंचलिक प्रिंट और प्रसारण माध्यमों में एक बड़ी समस्या अंग्रेजी का अनापेक्षित प्रभाव है जिससे भाषा का आंचलिक स्वरूप गायब हो रहा है। कुछ विद्वान भले ही इसे भाषा का विस्तार या उसका आयामीकरण कह दें पर भाषायी दृष्टि से यह चिंता. जनक स्थिति है।

संचार–माध्यमों की भाषा का एक और गुण उसका खुलापन व प्रयोगधर्मिता अथवा सुग्राह्यता भी है। हर पल यहाँ शब्दों के साथ नए प्रयोग या नए नए शब्द गढना जारी रहता है। सुप्रसिद्ध मीडिया लेखक **के के रत्तू** (1998) का मानना है कि हिंदी में हर 22 मिनट में एक बिगड़े हुए रूपक शब्द को मीडिया प्रसारित कर रहा है। यह भले ही आज प्रीतिकर लगे परन्तु कहीं भाषा का यह कल्पना प्रयोजनमूलक स्वरूप अपनी व्याकरणी निष्ठा से दूर जा रहा है। संचार–माध्यमों की भाषा में भले ही प्रयोजनमूलकता के कितने ही पुट उसमें क्यों न हों, प्रकार्यात्मक रूप में भी भाषाई मानदंड की अपे क्षा तो होती ही है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि क्या केवल प्रयोजनमूलकता का तत्त्व भाषा में प्रमुख है या भाषिक व्याकरणीय रूप का होना भी अपेक्षित है? संभवतः वर्तमान की प्रयोजनमूलकता से हटकर यदि भाषा के भविष्य के स्वरूप पर विचार किया जाये तो व्याकरणीय तत्त्वों की रक्षा का प्रश्न भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

संचार–माध्यमों पर विश्व बाजार भी व्यापक रूप से प्रभाव डालता है। तकनालाजी के प्रभाव और ग्लोबीय संस्कार भाषा के साथ लगातार नए प्रयोग करने का दबाव बनाये रखते हैं। ग्राम्य से कॉस्मोपोलिटीन और फिर वैश्विकता के प्रश्न निर्बाध रूप से भाषा को अपना स्वरूप क्षण–प्रतिक्षण बदलने के लिए आधार दे रहे हैं। आज हमारा ड्राईंगरूम एक लघु सद्य विश्व चलचित्र स्क्रीन बन चुका है, अतः भाषा का प्रश्न केंद्रीय बनेगा ही, या यूँ कहें कि भाषा गौण हो रही है, प्रभाव, ध्वनि, दृश्य, कल्पना, कार्टून, एनिमेशन त्रि–आयामी प्रभाव भाषा के संप्रेषणीय तत्त्वों का अपहरण कर मानो उसे शून्य बनाने पर आतुर हैं।

संचार–माध्यमो की भाषा जिस तीव्र गति से हम तक पहुंचती है इससे भविष्य में एक प्रसारण भाषा का भी उदय हो सकता है। उसका व्यवहार क्या होगा यह विचारणीय है। कुछ समीक्षकों को डर है कि यदि संचार माध्यम लगातार केवल प्रयोजनमूलकतापरक भाषा को ही गतिमय बनाये रखते हैं तो उसके व्याकरणीय तत्त्वों के निरंतर ह्रास से वह नए रूप में उदित हो जायगी। आज भी महानगरों की अपनी भाषा तो हो ही गयी है, उनके दैनंदिन व्यवहार का अपना मुहावरा है, उसी प्रकार संचार–माध्यमों की भी अपनी ही तरह की भाषा है, इसके उदहारण आजकल के टेलीविजन ध ारावाहकों में साफ देखे–सुने जा सकते हैं।

संचार की भाषा के लिए कथ्य को संप्रेषित करना ही मुख्य लक्ष्य होता है अतः कोडीकरण व विकोडीकरण के प्रति लेखक को विशेष ध्यान देना होगा। शब्द अपने आप में कोई वस्तु नहीं अपितु ये केवल लक्षण हैं जो वास्तविकता को पूर्णतः व्यक्त नहीं करते हैं। शब्द अपने सन्दर्भ को मुश्किल से ही पूरा कर पाते हैं। शब्दों का सन्दर्भ–शून्यता में शायद ही कोई अर्थ हो, क्योंकि वे अलग–अलग परिस्थितियों में अलग–अलग अर्थ व्यक्त करते हैं। यही महत्वपूर्ण बिंदु संचार–माध्यमों के अनुवाद में भी अर्थ–अभिव्यक्ति–सम्प्रेषण के केंद्रीय तत्त्व बन जाते हैं। अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया के दौरान श्रोता या प्रेषक के कथन का माध्यम व भाषांतरण के दौरान अर्थातिशय या अर्थापकर्ष होने की आशंका बनी रहती है। **डा. प्रभाकर माचवे** का आलेख संचार–माध्यम और दशा (1988) इस ओर संकेत करता है, जब वे कहते हैं कि संचार–माध्यमों में लोक–भाषा का लिखित रूप और जन–भाषा का समतोल बहुत जरूरी है। विज्ञापन, ब्रोश्युर व इसी प्रकार के संचार में भाषा बोझिल हो जाती है, वह लगभग सीधे अनुवादित होकर विशिष्ट वर्ग के लिए ही होती है और कभी तो यह केवल विज्ञापन मात्र के लिए ही हो जाती है। हालाँकि पिछले दशक में इसमें बदलाव आया है और जब से एल।पी।जी। *(लिब्रलाईजेशन, प्रायिवेटाईजेशन तथा ग्लोबलाईजेशन*) अर्थात उदारीकरण निजीकरण तथा वैश्वीकरण आदि से व्यापार–जगत प्रभावित हुआ है, विज्ञापन की भाषा आंचलिकता व ग्राम्य–परिवेश का भी प्रतिनिधित्व करती नजर आनी शुरू हो गई है। **माचवे जी** का भी यह मत है कि पत्र–पत्रिकाओं में भाषा का ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि स्वाधीनता संग्राम और जन–जागरण में इनकी महती भूमिका है, परन्तु ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में सभी दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्रों में आज भी पिष्ट–पेषण मात्र ही हो रहा है, उन्हें मौलिक लेखन को प्रोत्साहित करना चाहिए। जयंत नार्लीकर और यशपाल की सहज, सरल और सुबोध भाषा को आगे बढ़ाने की नितांत आवश्यकता है।

भाषा को सफल संचार में अपनी भूमिका के रूप में अधिक समर्थ होने के लिए उसके सरलीकरण और सहज स्वरूप की आवश्यकता है। और, एवं, तथा आदि में कोई झगडा अथवा अंतर्विरोध तो है ही नहीं, बस भाषा को सेतु रूप में अपनाने की इच्छा हो तो दीवारें अपने आप ही टूट जाती हैं।

तकनीकी व वैज्ञानिक संचार में भाषा की समझ और भी आवश्यक है। इसमें जहाँ पठनीयता का सूत्र तो सामने रहना ही चाहिए वहीँ श्रोता, दर्शक या पाठक वर्ग को ध्यान में रखना भी अनिवार्य है। काल्पनिक पाठक के लिए विज्ञान वार्ता अथवा वृत्तचित्र या लंबे लंबे शोध आलेख लिखे या प्रसारित नहीं किये जा सकते हैं। इसी प्रकार संभावित दर्शकों या पाठकों की अपेक्षाओं और आवश्यकताओं को जाने बिना टेलीविजन कार्यक्रम या साइंस फीचर बनाना निरुद्देश्य हो होगा। अतः अनिश्चित पाठक, अस्पष्ट उद्देश्य, भाषा दुरूहता, शैली की एकरसता आदि किसी भी संचार माध्यम के लिए घातक हैं। लक्षित को लगातार अपने परिवेश से जोडना और दैनंदिन अनुभवों को जोड़ने वाली भाषा, छोटे छोटे वाक्यों, निश्चयात्मकता और ठोस उदाहरणों का होना अनिवार्य हो। तकनीकी सामग्री का अनुवाद करते समय भी पर्याय चयन में स्थानीयकरण या स्वदेशीकरण तथा स्थानीय अभिव्यक्तियों व उदाहरणों के माध्यम से क्लिष्ट संकल्पनाओं के हल प्राप्त होने की गुंजाइश बनी रहती है।

संचार माध्यम और अनुवाद:

संचार–माध्यमों की भाषा की प्रकृति व उससे संबंधित विविध प्रश्नों पर विस्तृत मनन व चर्चा के उपरांत यह स्वाभाविक निष्कर्ष प्राप्त होता है कि भाषा केवल प्रकार्यात्मक भूमिका का निर्वहन करती है। संचार–माध्यमों में यह अधिकांशतः प्रयोजनमूलक स्वरूप में ही बनी रहती है। इसलिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि भाषा केवल माध्यम है, पूरा संचार नहीं। अतः संचार प्रक्रिया में जो तीन महत्वपूर्ण तत्त्व – प्रेषक, सन्देश, और प्राप्तकर्ता हैं। वे केंद्रीय हैं और उनमें भीं कथ्य या मंतव्य (intent) और उसका लक्षित–माध्यम प्रकृति के अनुरूप अंतरण। ।

संचार क्रांति की द्रुत दौड़ में आज एकल माध्यम की कल्पना करना अस्वाभाविक ही होगा। जो कुछ उस क्षण वैचारिक पटल पर है अगले ही पल वह कंप्यूटर कि स्क्रीन पर बहु–माध्यमिक रूप में होगा। फिर मुद्रित रूप में। अत्यल्प समय में ध्वनि–अंकित होकर दृश्य–श्रव्य रूप में छोटी–बड़ी स्क्रीन द्वारा ग्लोबीय स्तर पर उपलब्ध हो रहा है। यही नहीं उसका एनिमेटेड या आयामी कल्पनालोकी उड़ान रूप भी प्रौद्योगिकी की सहायता से तत्क्षण ही प्राप्त हो रहा है। उसका कायांतरण (डबिंग या रूपांतरण) आदि भी हो रहा है। अतः "वर्तमान" मीडिया के नित नए प्रयोगों से अलग–अलग सौन्दर्यबोधी रूप में दिखायी दे रहा है। इसका संचार माध्यमों में अन्तःभाषिक, अंतर्भाषिक, आन्तर्भाषिक, और अंतर्प्रतीकात्मक (पाठ से संभाषा पाठ, रेडियो के लिए ध्वनि अंकन, स्क्रीन के लिए ध्वनि व दृश्यांकन और आरेखन तथा कंप्यूटर सहायित माध्यमों के लिए बहु–मीडिया रूप में) अनुवाद अति–तीव्र गति से हो रहा है। इक्कीसवीं सदी का जनसंचार तेजी से बदलती प्रौद्योगिकी, डिजिटल तकनीक और इन्टरनेट जैसी सुविधाओं से जहाँ सर्व–सुलभ हो रहा है वहीं यह जटिल भी हो रहा है। इस सब में अनुवाद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गयी है। नई वैश्विक परिस्थिति में मानवीय और सामाजिक सरोकार भी बदल रहे हैं। अतः अनुवाद संचार क्रांति में मानवीय चेतना की अभिव्यक्ति का साधन भी बन रहा है। आज संचार–माध्यमों में अनुवाद का जो स्वरूप उभर रहा है वह मानक अनुवाद तो नहीं अपितु अनुवाद का प्रकार्यात्मक स्वरूप तो है ही। संचार–माध्यमों का अनुवाद शाब्दिक न होकर भावात्मक अधिक होता है, चाहे वह संचार माध्यम का कोई भी रूप क्यों न हो।

भारत में प्राचीनकाल से ही अनुवाद परंपरा रही है। वैदिक, पौराणिक और रामायण–महाभारत आदि भारतीय कालजयी

साहित्य के विश्व–व्यापी अनुवाद इसका प्रमाण है। आठवीं–नवमी तथा दशम शताब्दी में संस्कृत के श्रेष्ठ साहित्य के अनुवाद भी महत्वपूर्ण है। मध्यकाल में भारतीय साहित्य का पर्याप्त अनुवाद विदेशी भाषाओँ में किया गया है जबकि पंद्रहवीं व सोलहवीं शताब्दी के बाद अनुवाद अनेक निहितार्थों के कारण हुए इनमें राजनैतिक आर्थिक अथवा तात्कालिक उद्देश्य थे, परन्तु उन्नीसवीं–बीसवीं शताब्दी में मुद्रण कला के पर्याप्त विकास से छपाई–अक्षर का प्रचार–प्रसार व्यापक पैमाने पर होने लगा है और साथ ही मुद्रित जनसंचार–माध्यमों का भी विकास तीव्रता से हुआ। इसके साथ ही बीसवीं शताब्दी के महत्वपूर्ण प्रसारण तंत्रों – रेडियो, फिल्म और टेलीविजन के आने से अनुवाद मानो अपनी परंपरागत सीमाओं का अतिक्रमण कर मानवीय सरोकारों से ओत–प्रोत गंभीर रिश्तों से जुड़ गया। और अब जिस तीव्रता से इन्टरनेट ने विश्व को अपनी लपेट में ले लिया है अनुवाद परंपरागत संचार, मुद्रित एवं अत्याधुनिक इलेक्ट्रानिक माध्यमों में नई परिभाषा के साथ दिशाबोध प्रदान कर रहा है। इस नए संचार परिवेश में अनुवाद ने ऐतिहासिकता, प्राचीन संस्कृति, शिक्षा, मनोरंजन और सूचना को नई संरचना व भाषा के रंगरूप में ढालकर, कथ्य या सन्देश को सरल, सुबोध भाषिक रूप में सहज, आंचलिक रूपांतरित और न जाने कितने अन्य रूपों में परिवर्तित कर दिया है।

व्यावहारिक रूप से संचार मध्यमों में अनुवाद की गतिविधि को देखा जाये तो वह भाषा का सीधा अनुवाद ही हो सकता है परन्तु आंचलिक मुहावरों से सुसज्जित भाषायी अनुवाद भी हो सकता है। क्षेत्रीय समाचार–पत्र, रेडियो की क्षेत्रीय सेवायें, क्षेत्रीय समाचार सेवायें व क्षेत्रीय और भारतीय भाषाओं में टेलीविजन प्रसारण इसके द्रष्टव्य उदाहरण हैं। यहाँ अनुवाद तो होता है परन्तु क्षेत्रीय मुहावरे और अभिव्यक्ति के साथ। संचार–माध्यमों में डबिंग भी अनुवाद का महत्वपूर्ण आयाम है। आज न केवल भारतीय कार्यक्रमों, अपितु विदेशी कार्यक्रमों को भी डबिंग द्वारा भारतीय जन–माध्यमों में प्रस्तुत किया जा रहा है इसकी खास विशेषता यह है कि डबिंग में जिस प्रकार भी अनुवाद भाषा का प्रयोग किया जा रहा है वह लक्ष्य भाषा के पर्याप्त आसपास व स्थानीय परिवेश की शब्दावली से भरपूर है और कभी कभी तो मूल अनुव. ांशिकी, वैज्ञानिक, तकनीकी व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को वर्णित करते हुए इसकी भारतीय संकल्पनाओं को स्थानीय अभिव्यक्तियों से स्पष्ट किया जाता है। खेल, विज्ञान, पर्यावरणीय विज्ञान, इतिहास, पर्यटन, के सुप्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय चेनल आज भारतीय लघु स्क्रीन के लिए *हिस्ट्री, नेशनल ज्योग्राफिक, ई एस पी एन, एनिमल प्लेनेट,* तथा विभिन्न राष्ट्रों की कला व संस्कृतियों को ध्वनित और प्रदर्शित करते अनेक कार्यक्रम व फिल्में अब हिंदी के साथ साथ भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध हैं। सब–टाइटलिंग या उप–शीर्षकों द्वारा भी विदेशी व भारतीय कार्यक्रमों को दिखाया जाता है।

इधर कालजयी साहित्य ।रामायण, महाभारत पर आधारित अनेक कार्यक्रम और धारावाहिक अब डबिंग के साथ साथ अन्य कल्पनालोकी त्रि–आयामी विधाओं–एनीमेटेड रूप में भी बनाए जा रहे हैं। यह भी कहना असंगत न होगा कि डबिंग और सब–टाइटलिंग व रूपान्तर जैसी अनुवाद विधाओं के कारण ही आज संचार माध्यम सही मायनों में जन–माध्यम बन रहे हैं और विश्व एक ग्लोबीय ग्राम। परन्तु यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि कथावस्तु, दृ श्यावली अथवा घटनाओं का संबंध लक्षित परिवेश के साथ तालमेल न रखता हो तो डबिंग और रूपांतरण रूपी अनुवाद महज भाषायी–क्रीडा और अबूझ लगता है। फाक्स हिस्ट्री या ट एल सी (Fox History or T.L.C.) चेनलों पर खानपान व यात्रा आदि से संबंधित जो कार्यक्रम दिखाए जाते हैं वे कई बार अनुवाद कि वजह से गड्डमड हो जाते है। क्योंकि न तो लक्ष्य परिवेश में उस प्रकार के व्यंजन प्रयोग में लाए जाते है और न ही उस प्रकार की नैसर्गिक अथवा मानव निर्मित गतिविधियां प्रचलित होती हैं। यदा–कदा इस प्रकार के अनुवाद से जन–असंतोष व अस्वीकृति भी उत्पन्न हो जाती है। अतः इस प्रकार के कार्यक्रम बेगाने, अर्थहीन और प्रभावशून्य बन जाते हैं।

अनुवाद करते समय मीडिया विशेष के गुणों व लक्षणों पर ध्यान दिया जाना महत्वपूर्ण है। ध्वनि प्रभावों से ही रेडियो का सम्पूर्ण प्रसारण होता है और अनूदित भाषा में यदि ध्वनि भाव–प्रवणता न आ सके तो संचार अवरूद्ध हो जायेगा। मनोवेग, दुःख, संवेग, हर्ष, विषाद, अतिरेक, मेघ–गर्जना और इसी प्रकार के अन्य भाव केवल ध्वनि प्रभाव से ही उत्पन्न किये जाते है। मुद्रित माध्यमों में जहाँ तथ्यात्मक और आयामात्मक सूचना देने में आरेखन व अंको का भरपूर प्रयोग किया जाता है वहीँ रेडियो या टेलीविजन पर जैसे '*लगभग*' (approximate) यथा –एक लाख करोड वर्तुल', 'सीधी', 'सपाट', 'चौकोर', 'नुकीली' आदि कहकर समझाया और दिखाया जाता है। मुद्रित और लिखित शब्द में दोनों के अपने अलग–अलग लक्षण होते हैं। लिखित शब्द वस्तुपरक एकालापित, स्थायी, सुयोजित, सम्यक संरचित, औपचारिक, सुव्याख्यायित, अमूर्त होता है जबकि ध्वन्यात्मक शब्द अंतर्वैक्तिक, सद्य, वर्तमान बोधक, अनौपचारिक, क्षणभंगुर, व्यक्त, इंगित कार्यपरक, संदर्भित तथा ठोस अर्थ का वाहक होते हैं (**Allan and Maria** 2009)। अतः अनुवादक को लिखित सामग्री का अनुवाद करते समय दृश्य श्रव्य माध्यम की प्रकृति को समझना आवश्यक है।

उपभोक्तावादी पश्चिमी संस्कृति से अनुप्राणित सामाजिक और नैतिक प्रतिबद्धता का भारतीय रूपांतरण अथवा अनुवाद करते समय भारतीय मूल्यों एवं सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेशीय प्रतिबद्धताओं का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। अफ्रीकी या लातिनी अमरीकी आदिवासियों पर आधारित कार्यक्रमों में सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं के अंतर्गत स्वैच्छिक घोर–पीड़ा का अनुभव वयस्कता या सम्पूर्ण नारीत्व जैसी उपलब्धि के रूप में व्यक्त करना तथा सामुदायिक उल्लास व समारोहों के दौरान नृत्यों आदि में नग्नता को धुंधला करके दिखाना औचित्यपूर्ण अनुवाद का उत्तम उदहारण है। संचार माध्यमों में मायनों में आंतर–सांस्कृतिक अनुवाद की भरपूर गुंजाईश होती है।

संचार–माध्यमों द्वारा कई सरकारें राजनीतिक लाभ लेने के प्रयास भी करती हैं और तथ्यों को अपने उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने के दबाव बनाये जाते हैं। यह अनुवाद की राजनीति है।अफ्रीकीं देशों के लोगों को पश्चिमी माध्यमों पर आलसी, अल्प–प्रशिक्षित व मूल्य–विहीन दिखाये जाने की साजिश रची जाती है। परिणामस्वरूप उन्हें नेतृत्व देने या विश्वस्तरीय संस्थाओं का नेतृत्व करने में अयोग्य सिद्ध करने के षड्यंत्र से संचार माध्यमों में अनुवाद द्वारा राजनीति की जाती है। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रमुख व बहु–राष्ट्रीय कंपनियों के शीर्ष पदों पर आज भी इस प्रकार के भेदभाव एशियाई व अफ्रीकी मूल के लोगों को झेलने पड़ते हैं।

बहु–भाषिक व बहु–सांस्कृतिक देश भारत में सरकारी तथा गैर–सरकारी जन–माध्यमों पर भारतीय भाषाओँ के माध्यम से जनसंचार का दायित्व है। अनेक भाषाओँ में समाचार व कार्यक्रम अनूदित, डबिंग और रूपांतरित कर प्रस्तुत किये जाते हैं। अतः प्रत्येक अनूदित, रूपांतरित, डब किये गए कार्यक्रमों में लक्ष्य जन–समुदाय की भाषा के मुहावरे, भौगोलिकी तथा अन्य सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक आयामों के अनुरूप अनुवाद की रुपरेखा बनायी जाती है। इसके साथ ही उनमें ईमानदारी और स्थानीय व पारंपरिक ज्ञान का होना भी आवश्यक है, मसलन राष्ट्रीय स्तर पर मापतोल, बाजार–भाव, नाते रिश्ते, खान–पान, पहरावा, शादी–विवाह के संस्कारों के अभिव्यक्ति चित्रण सभी क्षेत्रीय संचार–माध्यमों में लक्ष्य भाषा संस्कृति के अनुरूप ही होनी चाहिए। मौसम, कृषि, स्थानीय कौशल और धरोहरों की तथ्यात्मक जानकारी अपरिहार्य है।

भारतीय मुद्रित संचार–माध्यमों में अनुवाद अधिकांशतः अंग्रेजी से हिंदी में होता है, इसकी एक वजह मुख्य समाचार एजेंसियां अंग्रेजी की ही हैं। परिणामतः अंग्रेजी का मुहावरा व शैली अनुवाद में बनी ही रहती है। सभी समाचार पत्रों के क्षेत्रीय संस्करण भी निकलते हैं और धीरे–धीरे पूल समाचार अब पर्याप्त मात्रा में हिंदी व स्थानीय भाषाओं में भी मिल रहे हैं। फिर भी वस्तुस्थिति यही है कि आज भी स्थानीय माध्यमों के लिए अनुवाद एक मुख्य गतिविधि है। **भोलानाथ तिवारी** के अनुसार समाचार माध्यमों के अनुवाद में संक्षिप्तियों, शीर्षकों के अनुवाद काफी दुष्कर होते हैं क्योंकि ये अधिकांशतः अंग्रेजी की प्रकृति के अधिक नजदीक होते हैं और इनका अनुवाद लक्ष्य भाषा में कई बार एक सीमित शब्द रूप में होता है। USA,China,Russia,United Kingdom के लिए अमेरिका, चीन, रूस, ब्रिटेन जैसी संक्षिप्तियाँ स्वीकृत हैं। और इसी प्रकार सम्पादकीय का अनुवाद भी पत्र विशेष की नीति या पेपर लाइन को प्रतिबिंबित करता है अतः अनुवाद में उस रुझान को बनाये रखना आवश्यक है। हम जानते हैं कि समाचार पत्र सत्ता पक्ष या प्रतिपक्ष की ओर भी रुझान रखते हैं। समाचार पत्रों पर दबाव भी होता हैं और दबाव के अंतर्गत निर्मित समाचार का अनुवाद और कठिन चुनौती होता है। वर्तनी की मानकता का प्रश्न भी उत्पन्न हो जाता है। समाचारों के अनुवाद में तात्कालिकता की बाधा का भी महत्त्व है क्योंकि इनका प्रकाशन नियमित व आवधिक (cyclic) होता है जिसमें विलम्ब नहीं हो सकता है अतः अनुवादक को सही–सही अनुवाद तुरंत करने का कठिन कार्य करना होता है। समाचार पत्रों की अपनी अपनी रूपरेखा होता है, जिसमे खेल, आर्थिकी, वाणिज्य, स्टाक शेयर, तथा दूसरे स्थायी स्तंभ होते हैं जिनके लिए न केवल विशिष्ट शब्दावली की आवश्यकता होती है अपितु उसका मुहावरा भी अपना होता है। चमका, उछला, शेर–गरजे, धूल–चटाना, लिवाली, आवक, मंदडिए आदि विशिष्ट शब्दावली के लिए अनुवादक को सदैव तत्पर रहना पड़ता है। समाचार पत्रों में सपाट भाषा के स्थान पर मुहावरेदार और सरल सुबोध भाषा की आवश्यकता होती है। यह एक प्रकार की सर्जनात्मक या क्रिएटिव भाषा होती है। अक्सर स्थान, राष्ट्रों, व्यक्तियों व रीति–रिवाजों के लिए हर समाचार–पत्र की अपनी अपनी मानक वर्तनी होती है। अतः अनुवादक को अपने समाचार–पत्र के लिए स्वीकृति वर्तनी के अनुसार ही शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए। उन्हें सन्दर्भ विशेष में अर्थ–ग्राहकता के प्रति सचेत रहें की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए इनतेजपदह पितम वत इनतेज पदजव जमंते का अनुवाद आग उगलना अथवा विलख पड़ने के स्थान पर क्रोध व दुःख की स्थिति में अति–कुपित होना और आंसू आ जाना ही उचित होगा। अंग्रेजी में gun शब्द के बन्दुक और तोप दोनों ही अर्थ सन्दर्भ विशेष में ग्रहण किये जाते हैं। the anti-aircraft guns shoots missiles का हिंदी अनुवाद विमानभेदी बंदूकों ने मिसाईले मार गिराईं के स्थान पर विमानभेदी तोपें होना चाहिए।

यही बातें इलेक्ट्रानिक माध्यमों पर भी लागू होती है। इनमें भी कार्यक्रमों की व्यापक रेंज होती है और उन सभी की अपने–अपने श्रोता या दर्शक अथवा प्रयोक्ता वर्ग की विशिष्ट आवश्यकताओं के साथ साथ कार्यक्रम विशेष की प्रकृति (यथा साहित्यिक प्रकृति, चर्चा, गोष्ठी, युवा, खेल, व्यापार, धारावाहिक, समाचार, कृषि, विज्ञान, स्वास्थ्य, समसामयिक) व अन्य श्रेणियों के कार्यक्रमों में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली होती है जिसका अनुवादक को ज्ञान होना अपेक्षित है। भारतीय सन्दर्भ में हम जानते है कि हिंदी भाषा में अनेक सहयोगी शब्द हमारी आवश्यकताओं की सहज आपूर्ति कर सकते हैं। इनके प्रयोग हमें भाषा को बोझिल होने से बचा सकते है। भारतीय भाषाओं में अक्सर परिवेशीय शब्दों की गुंजाइश बनी रहती है और इनका आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। आतंकवादी, खाड़कू दहशतगर्द, मिलि. टेंट आदि शब्द एक ही मंतव्य को व्यक्त करते हैं। संचार–माध्यमों में सामासिक शब्द जैसे शासनाधिकारी डिग्रीधारी,

बैटरीचालित, दलबदलू, नक्सलवाद जैसे शब्द आसानी से प्रयुक्त किये जा सकते हैं जो आम जन के अधिक नजदीक हैं। अनुवाद के रूप में ये सुग्राह्य होते हैं। संभवतः रेडियो व टेलीविजन में समाचारों का अनुवाद कम पुनर्लेखन अधिक होता है अतः उसे श्रोता या दर्शक वर्ग के अनुसार ढाल लिया जाना अपेक्षित है। लंबे वाक्यों में भी कर्त्ता और क्रिया में कम से कम अंतराल रखा जा सकता है। अतः 'शिष्टमंडल परसों रूस से लौट आया था' के स्थान पर 'लौट आया है' इलेक्ट्रानिक माध्यमों में अधिक नजदीक प्रतीत होता है। "इन देशों में उपलब्ध तकनीकी जानकारी के आदान–प्रदान को बढ़ाने पर जोरदार अपील की" इस वाक्य में तीन विभक्तियों और सम्बन्ध वाचक कियाओं के प्रयोग यथा 'के' 'की' 'को' के स्थान पर केवल 'की' प्रयोग से ही अभिव्यक्त किया जा सकता है। जैसे 'जानकारी का लेन–देन बढ़ाने की जोरदार अपील की'। ऐसा श्रोता या दर्शक के अधिक नजदीक है। 'के बीच' और 'के मध्य' का अत्यधिक प्रयोग होने से भी अनुवाद में बोझिलता का अहसास होने लगा है। उदाहरण के लिए 'दोनों देशों के बीच सद्भाव और शांति स्थापित हो गई है' यहाँ पर 'दोनों देशों में सद्भाव और शांति हो गई' से भी वही अर्थ प्राप्त होता है। परन्तु यदा–कदा अर्थ को अधिक स्पष्ट करने की प्रवृत्ति से इस प्रकार के प्रयोग अनुवाद में किये जा रहे हैं।

नई सूचना क्रांति के दौर में इन्टरनेट के प्रयोग से जनसंचार में आमूलचूल परिवर्तन हुए है। विश्व व्यापी वेब अर्थात डब्ल्यू, डब्ल्यू डब्ल्यू (www) से सूचना की गति और उपलब्धता आशातीत है। क्षणमात्र में आज विश्व की प्रमुख भाषा से अथवा में अनुवाद उपलब्ध हो जाता है। अब तो भारतीय भाषाओं में भी यह अनुवाद की सुविधा हो गई यह। अतः मशीनी अनुवाद भी मीडिया क्षेत्र में एक साधन के रूप में उभर कर सामने आ रहा है। तथापि इसमें पर्याप्त सुधार व विकास की अभी अपेक्षा है जिसके लिए भाषा विज्ञानी व प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ काम कर रहे हैं। विश्वभर में जिस प्रकार इन्टरनेट व सोशल–साईट्स का प्रचलन लोकप्रिय होता जा रहा है, आपसी संवाद (डायलाग) की आवश्यकता और भी बलवती होती जा रही है।

संचार–माध्यमों में अनुवाद के अनेक रूप सामने आ रहे हैं। मुद्रित माध्यमों में सामग्री, कलेवर, प्रस्तुति, स्तरीयता और राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्करण जिस प्रकार नित नए रूप में सामने आ रहे है उसमें अनुवाद भाषिक और भाव, दोनों ही स्तरों पर एक नए स्वरूप में परिलक्षित हो रहा है। जहाँ गंभीर व ज्ञान साहित्य और साहित्यिक माध्यमों–पत्रिकाओं आदि की भाषा में अनुवाद के पारंपरिक सिद्धांतों का परिपालन किया जा रहा है, ज्ञान साहित्य में अन्तःसंकायिक अनुवाद द्वारा विभिन्न भाषिक समुदायों के बीच ज्ञान का प्रचार–प्रसार हो रहा है। मनोरंजन साहित्य, बाल–साहित्य और विकासात्मक व विशिष्ट पाठक वर्ग के लिए भी आज प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। यहाँ तक कि कामिक्स व बाल–साहित्य में अनुवाद के माध्यम से प्राचीन भारतीय साहित्य और विश्व साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओं का अनुवाद कल्पनात्मक आलोक के साथ सामने आ रहा है। यह निश्चय ही अनुवाद की एक बृहद भूमिका है, जो पूरी मानवता के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन का निर्माण कर रही है। परंपरा और धरोहर को संरक्षित रखने की ओर यह प्रयास है। जनसंचार में केवल मानव नियति के प्रति मूल्य बोध आवश्यक है वर्ग विशेष के लिए नहीं। विशाल देश–व्यापी तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संचार–माध्यमों के लिए सामग्री एकत्र करना भी अनुवाद के सिवाए अन्य साधन से संभव नहीं है। हजारों की संख्या में समाचार–पत्र, रेडियो, टेलीविजन, तथा अन्य माध्यम समाज में संवाद की प्रक्रिया को सतत बनाये रखने में अनुवाद के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। (**अय्यर 1997**)। इसके लिए 'उल्टा पिरामिड' की तकनीक को अपनाया जा सकता है। सर्वप्रथम मूल को गौर से पढ़ जाये और तत्पश्चात उसमें से तथ्यों को ग्रहण किया जाये और अपनी भाषा में लिख लिया जाये (**जैमिनी कुमार श्रीवास्तव** 1991)।

इलेक्ट्रानिक और स्क्रीन माध्यमों के लिए भी अनुवाद की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। रेडियो के लिए अक्सर ध्वनि प्रभावात्मक विधा का प्रयोग किया जाता है। यह तो ज्ञात ही है कि इस माध्यम के व्यापक स्वरूप को देखते हुए उसकी भाषा में अनुवाद करते समय पर्याप्त प्रायोगिकता की अपेक्षा बनी रहती है। रेडियो के लिए अनुवाद करते समय हम पूर्व या पर–संदर्भ के लिए केवल उसको 'जोड़ते' है – आपने अभी सुना, अब आप सुनेंगे या अब आप जानेंगे, इस प्रकार के प्रयोग से या मालूम पड़ता है उसकी सामने बैठे व्यक्ति से बातचीत हो रही है। कहने का अभिप्राय यह है कि रेडियो में अधिक औपचरिक भाषा का प्रयोग नहीं होता है। बाल मंच या चौपाल आदि कार्यक्रम में लोकप्रिय चरित्र आरोपित कर दिए जाते हैं। जैसे चुनु मुन्नू, रामू, लक्ष्मी, गोलू राम, मुंशी चाचा आदि। कल्पनात्मक चित्र ध्वनिप्रभाव से उकेरे जाते हैं। नाटक के रूपांतरण में पात्र आरोपण, मंचीय तत्त्व अभिधान, ध्वनिप्रभाव और स्थानीयकरण किया जाता है।

रेडियो कार्यक्रमों का विशाल श्रोता समूह के लिए लक्षित होने के बावजूद प्रत्येक श्रोता को यही आभास होता है कि यह कार्यक्रम अथवा प्रसारण उसी के लिए है। रेडियो जन माध्यम तो है परन्तु यह सबसे अधिक वैयक्तिक माध्यम भी है। दृ

श्य माध्यमों के लिए भी अनुवाद करते समय चित्र व दृश्यों का सामंजस्य रखना आवश्यक होता है। कई बार तो संक्षिप्तानुवाद कर विस्तृत दृश्यावली, संवाद, अनवरत घटनाओं के ऐतिहासिक चित्रों आदि को समायोजित करने वाले आलेख बनाने पड़ते है। यह जानना आवश्यक है कि रेडियो में जहाँ ध्वनिप्रभाव सहित भाषिक अनुवाद या शाब्दिक अनुवाद का अवसर रहता है वहीँ टेलीविजन व स्क्रीन के लिए रूपांतरण का प्रयोग ज्यादा होता है अर्थात प्लाट या कथावस्तु को अभिनय द्वारा व्यक्त करने में उसका स्क्रीन रूपांतरण या आवश्यकता होने पर डबिंग के रूप में, विशेष कर विश्व के श्रेष्ठ रेडियो व टेलीविजन कार्यक्रमों में व्यापक पैमाने पर किया जाता है। टेलीविजन के बारे में यह दावा किया जाता है कि यह सच्चाई को दर्शकों के समक्ष लाता है, क्योंकि 'Camera does not lie' और साथ ही यह भी कि इसका " Landslide effect जन–मानस पर व्यापक व दर्शनीय प्रभाव पड़ता है"। अतः इस माध्यम से दर्शकों की अपेक्षाएं अत्यधिक बढ जाती हैं। विश्व एवं भारतीय परिवेश में सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों और प्रतिबद्धताओं को ध्यान में रखते हुए टेलीविजन की इस '**इमेज**' को बनाये रखने में घटनाओं, समाचारों तथा दृश्यों का अनुवाद करते समय सोद्देश्यता तथा वस्तुपरकता को प्राथमिकता देना अनिवार्य हो जाता है (**वाडिया** 1999)

अनुवाद अध्ययन के लिए यह शोध का विशाल क्षेत्र है कि किस प्रक्रार उच्च तकनीकी स्वरूप और हास्य–व्यंग्य के कार्यक्रमों को सहजता से लक्ष्य भाषा के श्रोता, दर्शक व पाठक के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। शब्दावली, अभिव्यक्तियों, सन्दर्भों तथा वैज्ञानिक खोजों के त्रि–आयामी प्रभावों को डबिंग के माध्यम से ध्वनिप्रभावों द्वारा त्रिआयामी दृश्यों के साथ मिलाकर कल्पनालोक को साकार करते हुए देखा जा सकता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जनसंचार के माध्यमों में अनुवाद नित–नए प्रयोगों से मानक भाषा के व्याकरणीय तत्त्वों की नयी–नयी संरचना करता है। आज संचार–माध्यमों में हिंदी का स्वरूप इसका उत्तम उदाहरण है। रेडियो, टेलीविजन, तथा पत्र–पत्रिकाओं की अपनी भाषा है, अपना व्याकरण है जो उनके प्रयोक्ता वर्ग की अपेक्षाओं और स्वीकार्यताओं से बन रहा है। अनुवाद को इस बदलाव और स्वीकार्यता को नई अनुवाद विधि में स्वीकार करना पड़ रहा है जिससे अब मौलिकता और मानकता का प्रश्न अनुवाद के समक्ष भी आ खड़ा हुआ है। वर्तमान युग संचार क्रांति का युग है और जीवन की गति असमान व अभूतपूर्व है। परिणामतः संचार प्रक्रिया की स्वाभाविक मांग है कि सम्प्रेषण सरल, सहज और सुबोध हो, हल्का–फुल्का हो, नजदीकी व लोक–भाषा के रसास्वादन को देने वाला हो ताकि वह जीवन को सहजता तथा सुकून दे सके और संवाद को बेहत्तर तरीके से सुगमित कर सके। आजकल प्रसारित होने बाले अधिकांश धारावाहिकों, हास्य–व्यंग्य व खेल कार्यक्रमों की भाषा को देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है कि संचार–माध्यमों का स्वरूप कास्मोपोलिटन होने के साथ–साथ प्रांतीय व क्षेत्रीय भी है जिसमें स्थानीय मुहावरे का प्रयोग भरपूर किया जाता है। अनुवादकों को संचार के इन सूक्ष्म पहलुओं को समझना होगा। और जैसा कि सुप्रसिद्ध लेखक **खुशवंत सिंह** ने अपने एक साक्षात्कार में कहा कि अनुवादक केवल मूल और लक्ष्य में अकादमिक योग्यता हासिल कर अच्छा अनुवादक नहीं बन जाता है अपितु आवश्यक यह है कि अनुवादक उस परिवेश को जीये और अनुभव करे तभी वह मीडिया की संस्कृति में बेहत्तर अनुवाद कर सकता है।

संचार–माध्यमों के अनुवाद में यह भी महत्वपूर्ण पक्ष है कि यह सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का सम्मिश्रित फलक होता है, अतः यह पुस्तकीय ज्ञान अथवा तत्काल पुष्टि किये जाने वाले लैब ज्ञान–सूचना से भिन्न होता है। इसमें सूचना और ज्ञान को मनोरंजन के आवरण में एक कैप्स्यूल बनाकर प्रस्तुत किया जाता है जिसमें कल्पनालोक, ध्वनिप्रभाव, तथा त्रि–आयामी प्रभावों द्वारा कार्यक्रमों और मुद्रित सामग्री को अधिक रोचक, नवोन्मेषी व उपयोगी ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। विभिन्न सामाजिक, साहित्यिक और व्यवहारमूलक अभिव्यक्तियों के लिए शुद्ध व स्वीकार्य पर्याय ही संचार–माध्यमों के अनुवाद में अपेक्षणीय हैं, तथापि संचार–माध्यमों में सर्जनात्मक साहित्य के एकाधिक अनुवाद रूप देखने को मिलते हैय उसे कविता से संगीतात्मक रूपक, अथवा कहानी या स्क्रीन प्ले तथा अन्य विधाओं में रूपांतरित कर दिया जाता है, ऐसे में अनुवादक संचार–माध्यमों के लिए अनुवाद करते समय सर्जक भी बन जाता है और तथाकथित "मूल" पाठ का निर्माता भी हो जाता है (**चेल्लापम** 1988)। जनसंचार माध्यमों द्वारा जन सम्प्रेषण के लिए आवश्यक है कि समाज में प्रचलित नाते–रिश्तों की अभिव्यक्तियों को ठीक–ठीक संप्रेषित किया जाये। यह देखा जाता है कि देश के विभिन्न भागों में पारिवारिक रिश्तों को अलग–अलग संबोधनों से व्यक्त किया जाता है। **अब्राहम रोसमन और पौला रुबेल** (2003) अपने लेख Are Kinship Terminologies and Kinship Concepts Translatable में इन पर गंभीर चिंतन करते ह। उनका मत है कि ये शब्द केवल एक भाषिक व्यवस्था नहीं अपितु प्रत्येक नाते–रिश्ते के शब्द का अपना आतंरिक महत्व होता है, और यदि समाज के किसी तत्त्व में परिवर्तन होता है तो इन नाते रिश्तों में भी परिवर्तन आता है। हम किसके साथ शादी विवाह कर सकते है, खा सकते हैं, ये मरे संबंधी हैं, ये हमारे पवित्र संस्कारों में भाग ले सकते है अथवा मृत्यु के उपरांत के संस्कारों में भाग ले सकते है, यह सब इन्हीं नाते रिश्तों की अभिव्यक्तियों से तय होता है। एक ही शब्द के अंतर्गत एक पूरा नाते–रिश्तों के शब्दों का समूह भी ढका रहता है जिसे रिश्तों का संसार

फैलता है। बड़ी माँ (दादी या ताई) बड़े पापा (दादा या ताया– ताऊ), भैया (सहोदर अथवा देवर, जेठ आदि) बुआ का पति, मौसी–मौसा, न जाने कितने ही रिश्ते समाज में प्रचलित हैं। जन–माध्यम के लिए इनका अनुवाद करना सरल कार्य नहीं होता है। उसे मूल कथ्य के परिवेशीय तत्त्वों को नजदीकी से परखना पड़ता है और तत्पश्चात लक्ष्य श्रोता, दर्शक या पाठक के परिवेश में उन अभिव्यक्तियों के लिए प्रचलित शब्दों को अन्वेषित करना होता है। माँ, बाप, दादा, दादी, बेटा, बेटी व बहु, भाई, भाभी के लिए भारतीय भाषाओँ में अलग अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं। मीडिया में इसके प्रति सावधान रहना आवश्यक है।

संचार–माध्यमों का अपना विशिष्ट संसार है। यह विशुद्ध रूप से सृजनात्मक, शैक्षिक, तकनीकी व अन्य विशिष्ट साहित्य के विषयों से परे भी पूरी सामाजिक जीवन–चर्या को अपनी परिधि में समेटता है। सूचनात्मक, साहित्यिक, मनोरंजक, बाजारू, वाणिज्य, खेल, राजनीतिक, सम्पादकीय, रूपकात्मक, ध्वन्यात्मक, दृश्य–ध्वन्यात्मक, पर्दे और अन्य विधाओं के साहित्य में अनुवाद का प्रश्न अभिन्न रूप से जुड़ा होता है। इसके अतिरिक्त संचार माध्यम भाषिक, सांस्कृतिक,व भौगोलिक अतिक्रमण से भाषायी, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक रूप से विभक्त जन समुदाओं को भी जोडते हैं। अतः संचार में जहाँ कुछ सांझे संप्रेषणीय तत्त्वों (अखंडता, देश प्रेम, इतिहास, विज्ञान) का अनुवाद करते समय अक्षुण्ण बनाये रखा जाना अनिवार्य है वहीँ अनेकता यानि विभिन्नता (diversity) के लक्षणों को भी उस एकता में सन्निहित करने में अनुवाद कार्य का मुख्य लक्ष्य रहता है। इसी से सभ्यता, संस्कृति व विविधता की रक्षा का कार्य भी अनुवादक को करना होता है। नई संचार क्रांति में आज केन्द्रीयता (Centrality) के प्रभाव के बढ़ने से इस वैविध्य को संरक्षित रखने का संकट भी उपस्थित हो गया है। Mass culture के साथ mass भाषा का डर भी पैदा हो रहा है। अनुवाद के माध्यम से संचार इस दिशा में सकारात्मक भूमिका निभा सकते है। देश के अनेक भागों में असंतोष, बिखराव और अलगाव के परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट स्थानीयता या प्रांतीयता का प्रतिनिधित्व न होना एक मुख्य कारण है। अतः जनसंचार माध्यमों के लिए यह अपरिहार्य है कि विभिन्न भाषिक समुदायों व वर्गों की संस्कृति व भाषा को अनुवाद में पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाये यह संचार मध्यमों में वास्तव में एक बड़ी चुनौती अनुवाद कार्य के समक्ष है। कहा जा सकता है कि संचार–माध्यमों में अनुवाद की बहुविध भूमिका के फलस्वरूप आज पहले से कहीं अधिक अपेक्षाएं है। यहाँ व्याकरणिक रूप से मानक, शाब्दिक, भावपरक रूपांतरित, डबिग, और यहाँ तक कि निर्वचनादि अनुवाद विधाओं का श्रोता, दर्शक अथवा पाठक एवं माध्यम और कथ्य की प्रकृति के अनुसार प्रयोग करना पड़ता है। वस्तुतः जन मीडिया अनुवादकों के लिए परीक्षण की कड़ी चुनौती प्रस्तुत करते है।

जन–माध्यमों में अनुवाद की अपार संभावनाए हैं। आलेख लेखक, अनुवादक, रूपान्तरकार, डबिंग, समाचार संपादक, कार्यक्रम संपादक, प्रस्तुतकर्ता, प्रस्तोता, संवाददाता और न जाने कितने ही अन्य रूपों में अनुवाद संचार–माध्यमों में एक सहयोगी संयोजक है। उसके लिए सामजिक निष्ठां, राजनीतिक और नैतिक मूल्यों व प्रतिबद्धताओं की रक्षा करते हुए नए युग कि चुनौतीयों के साथ सामंजस्य स्थापित करना होता है। मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है अतः मीडिया इसी ईमानदारी, निष्ठा, योग्यता, संवेदना और मूल्यनिष्ठता की सही परीक्षा के लिए भी अनुवादक को आमंत्रित करता है।

और **जान ब्रेवर** (1988) का अभिमत है कि अनुवाद सही मायनों में संस्कृति का वाहक और संरक्षक भी तो है। इस कार्य में संचार–माध्यमों के लिए अपनी भूमिका निभाना सरल नहीं है क्योंकि किसी भी स्थान विशेष की दैनंदिन जीवनशैली को सही–सही रूप से सार्वभौम करने में अनुवादक को उस लघु संस्कृति के प्रत्येक तत्त्व को समष्टि (संचार माध्यम के लक्षित) के साथ जोडने का दबाव होता है। इसके लिए अनुवादक को दोनों ही संस्कृतियों यानी अपनी और लक्ष्य भाषा की संस्कृतियों को जीना पड़ता है तथा दोनों के मध्य एक सेतु का निर्माण करना होता है। यह सेतु ही वाहक का कार्य करता है और इसमें संचार माध्यम अपनी–अपनी प्रकृति के अनुरूप भाषा, शैली और मुहावरे की अपेक्षा अनुवादक से करते है। **मार्शल मेक्लुहन** (1964) का यह कथन कि Media is an extension of man अनुवादक को मीडिया की भाषा और उसके स्वरूप में अनंत विचरण करने के लिए पर्याप्त अवकाश देता है।

References:-

1 तिवारी भोलानाथ, पत्रकारिता में अनुवाद की समस्याएं, शब्दकार, नई दिल्ली, 1999

2 रत्तु के के, संचार क्रांति और बदलता सामाजिक सौंदर्यबोध, पोईन्टर पब्लिशार्ज जयपुर, 1998

3 जनसंचार, राधे श्याम (सं)। हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1988

4 गुप्त ब्रजमोहन, जनसंचार और विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दरियागंज, नई दिल्ली, 1992

5 दीक्षित प्रवीण, जन माध्यम और पत्रकारिता, सहयोगी साहित्य संस्थान, कानपुर, 1980

6 वादानुवाद उत्तर आधुनिकतावाद की मृत्यु और पर आधुनिकतावाद, अवधेश कुमार सिंह, आलोचना, जनवरी–मार्च 2012

7 अनुवाद के विकासशील आयाम, अय्यर, एन. विश्वनाथ, अनुवाद, 93, अक्तू. दिसंबर 1997, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली

8 विज्ञापन और उसका अनुवाद, गोस्वामी कृष्ण कुमार, अनुवाद, अंक 147, भारतीय अनुवाद ब्यूरो, नई दिल्ली, जून 2011

9 मीडिया में अनुवाद, जैमिनी कुमार श्रीवास्तव, अनुवाद बोध, (पृ 186), अनुवाद बोध, भारतीय अनुवाद परिषद, नयी दिल्ली, 1991

10 Gupta Baldev Raj, Mass Communication and Development] Vishvavidyalaya Prakashan, Varanasi, 997

11 Newsom Dong, Wollert James A, Media Writing, 2nd Ed, Wordsworth PubA CoA Belmont, California, USA 1985

12 The Fine Art of Translation, Khushwant Singh in conversation with Rakesh Sharma, Translation from Periphery to centrestage, Prestige, New Delhi 1998

13 Chellapam, K, The Paradox of Transcreation, Literature in Translation from Cultural Transference to Metonymic Displacement, EdA Pramod Talgiri and S B Verma, Popular Prakashan, Mumbai, 1988

14 Brewer John T, The Role of Cultures in successful Translation , Literature in Translation from Cultural Transference to Metonymic Displacement, EdA Pramod Talgiri and S B Verma, Popular Prakashan, Mumbai, 1988

15 Abraham Rosman and Paula G Rubel Are Kinship Terminologies and Kinship Concepts TranslatableA Translating Cultures: Perspectives on Translation and Anthropology, Berg, New York 2003

16A Durrant Alan and Lambrou Marina, Language and Media, A resource bolo for students, Routledge, 2009

17 Wadia Angla, Communicating and Media, Studies in Ideas, Initiatives and Institutions, Kanishika Publishing House, New Delhi, 1999A

18 Watson James. Media Communication: Introduction to Theory and Process, Palgrave Macmillan, USA (2003)

19 Blumer Herbert, Collective Behavior,in Principles of Sociology, Barnes and Noble, New York 1946.

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी छात्रों के बीच नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

सारांश (abstract)- प्रस्तुत शोध पत्र में दो मूल्यों ईमानदारी एंव मानवता कों लिया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में केवल उत्तर प्रदेश के ललितपुर के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को लिया गया है। जिन्हें दो वर्गो में विभाजित किया गया है। 25 छात्र एवं 25 छात्राओं को लिया गया। जिसमें शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों में ईमानदारी एवं मानवता का नैतिक मूल्य ग्रामीण विद्यार्थियों की तुलना में अधिक है।

रोहित कुमार

B.Ed. M.Ed.

Lecturer-Aadinath College of Education Maharra Lalitpur

प्रस्तावना—मूल्य का सम्बन्ध व्यक्ति की पसन्द से है। जिस वस्तु को हम अधिक पसन्द करते हैं उसे हम अधिक मूल्य प्रदान करते हैं और उसे प्राप्त करना चाहते हैं। मूल्य का सम्बन्ध हमारी प्राथमिकताओं से है। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति इस दुनिया में शक्ति, धन और नाम को मूल्य प्रदान करता है किन्तु इन तीनोंमें से सबसे पहले वह किसको प्रधानता देता है इसका निर्णय वह इन तीनों की तुलनात्मक मूल्य को ध्यान में रखकर करेगा और ऐसा करने में प्रत्येक का क्रमिक मूल्य या क्रमिक स्थान देगा। मान लीजिए वह 'धन' को प्रथम प्रधानता देता है, 'शक्ति' को दूसरे नम्बर पर रखता है और 'नाम' को तीसरा स्थान देता है तो स्पष्ट है कि वह मूल्य–निर्धारण करने के पश्चात् ही ऐसा निश्चय कर पाया है। वह व्यक्ति पहले नम्बर पर धन प्राप्त करना चाहेगा, दूसरे पर शक्ति और शक्ति के पश्चात नाम की इच्छा करेगा। दूसरे, विभिन्न विकल्पों के मध्य जब हम प्राथमिकताओं के आधार पर उनका मूल्य–निर्धारण करते हैं तो उनमें से प्रत्येक विकल्प की प्राप्ति या उपलब्धता की पूर्ण सम्भावना मूल्यकर्ता को रहती है। अर्थात् मूल्य निर्धारण में हमारे सामने स्पष्ट विकल्प होते हैं जिनमें से हमें चयन करना होता है। दूसरे शब्दों में वे विकल्प हमारे सामने मौजूद होते हैं या स्पष्ट दिखाई देते हैं। दूसरी धारणाओं की तरह मूल्य शब्द के भी अनेक अर्थ निकलते हैं। मूल्यों की धारणा और अर्थ में संदर्भ तथा विषय/अनुशासन के अनुसार बदलाव आ जाता है। मसलन गणित में 'मूल्य' का अर्थ किसी बीजगणितीय पद या किसी समीकरण के एक चर या खुद व्यंजक का परिमाणात्मक मान होता है। भौतिकी में पदार्थ का मूल्य उसकी अन्तः वस्तु को किसी पारम्परिक पैमाने पर कियाजाने वाला परिमाणात्मक या संख्यात्मक माप है। अर्थशास्त्र में बाजार में दूसरे वस्तुओं/सेवाओं के सापेक्ष किसी वस्तु की अपनी महत्ता या क्रय शक्ति को उसका मूल्य कहते हैं। इसी प्रकार किसी समय विशेष में किसी वस्तु विशेष के बदले जितनी मुद्रा या जितनी अन्य वस्तुएं/सेवाएं प्राप्त हो सकती है, उन्हें उसका मूल्य कहा जा सकता है। रोजमर्रा की बातचीत में मूल्य से तात्पर्य यह है कि कोई व्यक्ति मनोगत स्तर पर किसी अच्छे विचार या सिद्धान्त को कितना महत्त्व प्रदान करता है। इस तरह मूल्य का सम्बन्ध जीवन के लिए मूल्यवान महत्वपूर्ण या शुभ समझी जाने वाली बातों के बारे में व्यक्ति के सिद्धान्तों या मानदंडों से होता है। मूल्य आमतौर पर कर्म की दृष्टि से चयन के मानदंड होते हैं। वे कमोवेश स्पष्ट ढंग से यह बताते हैं कि कुछ विशेष परिस्थितियों में हमेंक्या करना और क्या नहीं करना चाहिए। मूल्य वांछित होने के मापदंड होते हैं जो विशिष्ट स्थितियों से लगभग स्वतंत्र होते हैं। मूल्य अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जैसे– सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य और आर्थिक मूल्य आदि। प्रत्येक मानव के जीवन में कुछ न कुछ अनुभव अवश्य होते हैं, जो समय की गति के साथ–साथ बढ़ते

जाते हैं। इन्हीं अनुभवों से कुछ सामान्य सिद्धान्त जन्म लेते हैं, जो कि मानव के व्यवहार को निर्देशित करते हैं। ऐसे सिद्धान्त जो समस्त जीवन को एक दर्शन के रूप में परिवर्तित कर देते हैं तथा जीवन जीनेकी एक विशिष्ट कला को जन्म देते हैं। वे अनुभव व्यक्ति के पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करते हैं ''मूल्य'' अथवा ''वेल्यूज'' के नाम से जाने जाते हैं। व्यक्ति के मूल्य इस बात के दर्पण होते हैं कि वे अपनी सीमित शक्ति व समय में क्या करना चाहते हैं। जीवन के पथ–प्रदर्शक के रूप में मूल्य अनुभवों के साथ–साथ और अधिक परिपक्व होते जाते हैं। सामान्य रूप से मूल्यों का प्रयोग व्यक्ति की रूचियों, प्रेरणाओं एवंअभिवृत्ति के मापन हेतु किया जाता है अर्थात् मूल्य व्यक्ति की रूचियों, अभिवृत्तियों प्रेरणाओं की ओर इंगित करते हैं। मूल्यों की व्याख्या एवं विवेचना अलग–अलग विद्वानों के द्व ारा अलग–अलग तरह से की गई है।

ब्राइट मैन (1958) के अनुसार– मूल्य से हमारा आशय किसी पसन्द, पुरस्कार, वांछित पहुँचया आनन्द से है। किसी क्रिया या वांछित वस्तु का वास्तविक अनुभवों पर आनन्द प्राप्त करना ही मूल्य समझा जाता है अर्थात् मूल्य में समस्त सुखदायी भावनाएँ निहित होती हैं। किसी भी परिस्थिति या विशिष्ट समय में जिनके द्वारा व्यक्ति को आनन्द की अनुभूति होती है।

बी0एस0 सन्याल (1962) ने समस्त दार्शनिक परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् यह बताया कि मूल्य आंशिक रूप से भाव या तर्क से सम्बन्धित होते हैं जो स्थिर प्रकृति के होते हैं। जी0ई0 मूर व चार्ल्स मौरिस ने मूल्यों की जटिलता को देखते हुए कहा कि मूल्य जैसे प्रत्यय की परिभाषा करना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। मूल्यों की दार्शनिक परिभाषा इसे भावना, संवेग, चियों एवं अरूचियों के सन्दर्भ में स्वीकार करती है। मूल्यों के मनोवैज्ञनिक स्वरूप की व्याख्या करते हुए मर्फी, मर्फी एवं न्यूकौम्ब (1937) का मत है कि ''मूल्य सामान्य रूप से किसी उद्देश्य की प्राप्ति का एक विन्यास है।'' आल्पोर्ट (1951) के मतानुसार, 'मूल्य वह क्रिया है जो किसी उद्दीपक से उद्दीप्त होती है।' कलकहोन (1961) के शब्दों में 'मूल्य इच्छाओं के वे प्रत्यय है जो चयनात्मक व्यवहार के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।' यह एक विशेष प्रकार की अभिवृत्तियाँ भी होती है जो प्रतिमानों के रूप में कार्य करती है तथा जिनके द्वारा निर्णयों का मूल्यांकन होता है। अतएव विद्वानों की दृष्टि में मूल्य भावनाओं, विन्यासों क्रियाओं या अभिवृत्ति की उत्पत्ति है।

व्यक्तित्व के निर्माण में मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। एक व्यक्ति का व्यक्तित्व अन्य पक्षों के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के मूल्यों का संगठन होता है। प्रताप एवं श्रीवास्तव (1982) ने मूल्यों को व्यक्तित्व निर्माण के संगठन में महत्वपूर्ण माना है। रेसूचर (1969) ने मूल्यों को योग्यताओं, व्यवहार व किसी विशिष्ट उद्देश्यों के प्रति समर्पित होना माना है। कोई भी कार्य जो किसी व्यक्ति की इच्छा पूर्ति करता है, सामान्य रूप से मूल्य के रूप में माना जाता है।

वह व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों, रूचियों एवं अभिव्यक्तियों को इंगित करता है।

स्प्रेन्जर (1928) ने मूल्यों को एक व्यक्ति की अंतनिर्हित प्रेरणाओं एवं रूचियों के रूप में परिभाषित किया है। कुलम होम (1981) के शब्दों में ''मूल्य इच्छाओं के वे प्रत्यय हैं, जो चयनात्मक व्यवहार के लिए आवश्यक होते हैं''। ये एक प्रकार की अभिवृत्तियाँ भी होती हैं जो प्रतिमानों के रूप में कार्य करती है तथा जिनके द्वारा निर्णयों का मूल्यांकन होता है। मूल्य व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये वे इच्छायें होती हैं जो कि एक समाज के द्वारा स्वीकृत होती है। मूल्य वह मापित स्तर है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी इच्छाओं से प्रभावित होकर उपलब्ध विकल्पों में से किसी एक का चयन करता है। परिभाषा स्प्रेन्गर ने मूल्यों को एक व्यक्ति की अंतर्निहित प्रेरणाओं के रूप में परिभाषित किया है तथा छः वर्गों में विभक्त किया।

ये हैं –

1. सैद्वान्तिक मूल्य,
2. आर्थिक मूल्य,
3. सौन्दर्यात्मक मूल्य,
4. सामाजिक मूल्य,
5. राजनैतिक मूल्य,
6. धार्मिक मूल्य।

आल्पोर्ट के अनुसार, ''मूल्य वे विश्वास हैं जिन पर व्यक्ति प्राथमिकता से कार्य करता है।''

फ्लिंक (Flink) ने मूल्यों की अनेक परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद कहा कि मूल्य वे मानक हैं जिनसे कार्य करने के विभिन्न विकल्पों में व्यक्ति का चयन प्रभावित होता है।

पैपर (Pepper Stephen C.) ने मूल्यों को रूचियों, आनन्दों, पसन्दों, प्राथमिकताओं, कर्तव्यों, नैतिक दायित्वों, इच्छाओं, आवश्यकताओं, मांगों,आकर्षणों तथा चयनित अभिमुखता की अन्य अनेक प्रकारों के रूप में परिभाषित किया है। जुंग ने कहा है कि जिस प्रकार अन्य प्रत्ययों को मापा जा सकता है। उसी प्रकार मूल्यों को भी मापा जा सकता है। जिस प्रकार किसी व्यवसाय में होने वाले लाभ को मुद्रा के द्वारा मापा जा सकता है उसी प्रकार किसी व्यक्ति के क्या जीवन मूल्य है यह उसके द्वारा किए जाने वाले व्यवहार के द्वारा ज्ञात किये जा सकते हैं। मूरे (1975) ने अपने अध्ययन में पाया कि मूल्य व्यक्ति से भिन्न हो सकते हैं। रोकिच के मतानुसार किसी भी व्यक्ति के मूल्यों की तुलना वरीयता क्रम के द्वारा की जा सकती है। मूल्य एक विश्वास है जो कि व्यक्ति के वरीयता क्रम के द्वारा निर्धारित होता है। आलपोर्ट, बर्नन, लिण्डेजे के द्वारा मूल्यों के मापन के लिए बनाया गया है तथा उन्हीं मूल्यों को अपने जीवन में अपनाने की कोशिश करता है तथा किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के विषय में किस प्रकार का दृष्टिकोण बच्चे द्वारा अपनाया जायेगा इसका निर्धारण भी परिवार के सदस्यों तथा माता–पिता के दृष्टिकोण के ऊपर निर्भर करता है।

प्रस्तुत शोध में दो मूल्यों को ही लिया गया है–

1.ईमानदारी

2.मानवता

शोध अध्ययन के उद्देश्य–: उद्देश्य के अभाव में कोई भी कार्य करना रेत को मुठठी में पकडने के समान है क्योंकि संस्कृत में कहा जाता है कि **"प्रयोजन बिना मन्दोषपि न प्रवर्तत"** अर्थात बिना किसी उद्देष्य के तो मूर्ख भी प्रयत्न नहीं कर सकता है। प्रत्येक अध्ययन के लिए न्यादर्ष के चुनाव से लेकर प्राप्त निष्कर्षो तक समस्त प्रक्रिया का समाधान तभी हो सकता है जब इसका उद्देष्य निष्चित हों।

शोध अध्ययन के लिए निम्न उद्देश्य का निर्धारण किया गया है–

1.माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के बीच नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना है।

2.माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों की तुलना करना।

शोध की परिकल्पना : प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्धारण किया गया है।

1.ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही है।

शोध अध्ययन की परिसीमायें :

प्रस्तुत शोध पत्र में केवल उत्तर प्रदेश के ललितपुर के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों को लिया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र में केवल उत्तर प्रदेश के ललितपुर के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को लिया गया है।

शोध अधिकल्प–न्यादर्श समूचे इकाईयों से चुनी गई कुछ ऐसी ईकाईयों का समूह होता है,जो समष्टि का पर्याप्त प्रतिनिधित्व करता है ।

शोध अध्ययन हेतु ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र माध्यमिक स्तर के कक्षा 10 वीं के 50 – 50 छात्रों को लिया गया है ।

2.मूल्य प्रश्नावली– नैतिक मूल्य परीक्षण के लिए विद्या भारतीय प्रकाषन का एल0एन0 दुबे का नैतिक मूल्य परीक्षण प्रश्नावली ली गई है।

सांख्यिकीय गणना–

विद्यार्थी	ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की संख्या	शहरी क्षेत्र के छात्रों की संख्या
छात्र	25	25
छात्राऐं	25	25
ईमानदारी का गुण का औसत	09.55	8.2
मानवता का गुण का औसत	11.1	7.05

(प्रस्तुत आकडें मेरे शोध कार्य में एकत्रित ऑकडों को लिया गया है।)

उपरोक्त सारणी से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के छात्रो में ईमानदारी एवं मानवता का गुण शहरी क्षेत्र के छात्रों की तुलना में श्रेष्ठ है।

निष्कर्ष–: परिणाम हमारी शोध परिकल्पना के विपरीत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, वी.: वैल्यू सिस्टम एण्ड डायमेन्शन्स ऑफ यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट्स ऑफ यू.पी.। डाक्टोरल थीसिस, लखनऊ यूनिवर्सिटी, 1959 उद्धृत, एमबी. बुच द्वारा संपादित ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, सेन्टर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन एजूकेशन, बड़ोदा, 1974, 99 ।

2. आलपोर्ट, जी0 डब्ल्यू0: ए साइकोलोजीकल इन्टरप्रिंटेशन, हेनरी, होल्ट, न्यूयार्क।

3. अस्थाना, विपिन (1977): ''मनोविज्ञान शोध विधियाँ'', प्रकाशकः विनोद पुस्तक मन्दिर, कार्यालयः रांगेय राघव, आगरा–2 ।

4. बिस्सा, सुषमा सिंह, बी.सी. एण्ड हेलोदे, आर.डी., 1993 : सेल्फ कन्सेप्ट : ए कम्पैरीज़न बिटवीन ब्लाइंड एण्ड नार्मल स्टूडेन्ट्स। इण्डियन एब्स्ट्रैक्ट, इश्यु 3, जुलाई 1997, पृष्ठ 10 ।

5. भटनागर, सुरेशः ''शिक्षा मनोविज्ञान'' प्रकाशकः इन्टरनेशनल पब्लिशिंग, बेगम ब्रिज रोड, निकट गवर्नमेन्ट कालेज, मुद्रक एफीशियेन्ट प्रिन्टर्स, नई दिल्ली।

6. महेश, भार्गवः ''आधुनिक मनोविज्ञान परीक्षण एवं मापन'' हर प्रसाद भार्गव 4/230, कचहरी घाट, आगरा, 1990 ।

7. माथुर, एस.एस. : शिक्षा मनोविज्ञान, 1991, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर, पृष्ठ 748 ।

अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा और हिंदी सिनेमा

शिक्षण संस्थानों में हिंदी सिखाने में जितना वक्त लगता है, उससे कहीं कम समय में हिंदी फ़िल्में अपने दृश्यों और गीतों के समझा -माध्यम से सिखा देती है। दृश्य-श्रव्य माध्यम (सिनेमा)के द्वारा सीखने और सिखाने में बहुत अंतर है, क्योंकि सिनेमा में जो भाव अभिनय के साथ दिखाए जाते हैं वो किताबों से पढ़कर अनुभव नहीं किए जा सकते।

भूमिका

भाषा संस्कृति की धरोहर होती है। किसी भी संस्कृति के विकास एवं प्रचार-प्रसार हेतु भाषा के प्रचार-प्रसार की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हिंदी भाषा के संदर्भ में बात की जाए तो इस बात को आसानी से नकारा नही जा सकता कि वर्तमान में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार का सबसे सशक्त और प्रभावी माध्यम है- हिंदी सिनेमा। यह सत्य है कि सिनेमा मनोरंजन का माध्यम है लेकिन उससे भी बड़ा सत्य यह है कि आज के युग में सिनेमा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं संप्रेषण का सबसे बेहतर जरिया है। और बात अगर वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार की हो तो हिंदी सिनेमा सबसे ज्यादा प्रभावी और सरल माध्यम के रूप में नज़र आता है।

हिंदी भाषा की लोकप्रियता में हिंदी सिनेमा का विशेष योगदान है। वैसे तो विश्वभर में कई अलग-अलग भाषाओं में सिनेमा बनता है और भारत में ही लगभग कई स्थानीय भाषाओं का सिनेमा है। आजकल सिनेमा सेटेलाइट एवं इन्टरनेट जैसे माध्यमों के द्वारा विश्व के अनेक देशों तक अपनी पहुंच बना रहा है। हिंदी साहित्य की तरह ही हिंदी सिनेमा भी हिंदी भाषा, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता से पूरे विश्व को परिचित करा रहा है। भारत के बाहर बसे भारतीय मूल के लोगों की दूसरी व तीसरी पीढ़ी के बीच हिंदी को लोकप्रिय बनाने में हिंदी सिनेमा के प्रक्रियात्मक योगदान को स्वीकार किया जाने लगा है।

जब हम भारत व भारत के बाहर अहिंदी भाषी राज्यों में हिंदी के प्रचार-प्रसार की बात करते हैं तो हिंदी फ़िल्मों की भूमिका को नज़रअंदाज नही कर सकते हैं। हिंदी फिल्में, विशेषकर उनके गीत अफ्रीका, मध्य-पूर्व, मध्य एशिया, दक्षिणपूर्व एशिया और पूर्वी यूरोप के कुछ हिस्सों में बहुत ही लोकप्रिय हैं।

रूस के सेंट पीटर्सबर्ग में हिंदी पढ़ाने वाले बारानिकोव की तीन पीढ़ियाँ हिंदी से जुड़ी हुई हैं। डॉ पीटर बारानिकोव मानते हैं कि हिंदी के प्रचार प्रसार में हिंदी सिनेमा ने जितना योगदान दिया है उतना और किसी माध्यम ने नहीं दिया है। राज कपूर पूरे सोवियत संघ में बहुत ही लोकप्रिय हैं। यहाँ तक कि वहाँ के भूतपूर्व राष्ट्रपति बोरिस एल्त्सिन को भी "आवारा हूँ" गीत गुनगुनाते हुए सुना गया। ज़ाहिर सी बात है की हिंदी फ़िल्में कई पूर्वी यूरोपियन देशों जैसे पोलैंड, हंगरी और बुल्गारिया में भी बहुत सफल हुई थी।

हिंदी सिनेमा का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रियता का कारण देखें तो इसके पीछे कई कारण नज़र आते हैं-

प्रवासी भारतीय

व्यावसायिक प्रतियोगिता व बढ़ता हुआ अंतर्राष्ट्रीय बाजार

भारतीय भाषा, सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति आकर्षण

विदेशी शिक्षण संस्थानों में हिंदी का बढ़ता अध्ययन-अध्यापन

हिंदी भाषा को सीखने व सिखाने का मनोरंजक व सशक्त माध्यम होना

प्रवीण सिंह

शिक्षण संस्थानों में हिंदी सिखाने में जितना वक्त लगता है, उससे कहीं कम समय में हिंदी फ़िल्में अपने दृश्यों और गीतों के माध्यम से सिखा-समझा देती है। दृश्य-श्रव्य माध्यम (सिनेमा) के द्वारा सीखने और सिखाने में बहुत अंतर है, क्योंकि सिनेमा में जो भाव अभिनय के साथ दिखाए जाते हैं वो किताबों से पढ़कर अनुभव नहीं किए जा सकते। हिंदी सिनेमा किताबों को अभिनय, गीत -संगीत, भाव-संवाद आदि के द्वारा परदे पर जीवंत करती है। प्रवासी भारतीय भी अपने बच्चों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझते हुए भारतीय संस्कृति और सभ्यता से परिचित कराने तथा हिंदी भाषा सिखाने हेतु अपने बच्चों को हिंदी सिनेमा देखने के लिए प्रोत्साहित करते है।

हिंदी फिल्में और भाषा प्रचार की प्रक्रिया

सिनेमा की भाषा आम भाषाओं से बहुत ही भिन्न होती है। सिनेमा की भाषा दृश्य-श्रव्य गुणों से परिपूर्ण होती है। हिंदी सिनेमा ने कई सारी प्रक्रियाओं से गुजरकर अपनी दृश्य भाषा का आविष्कार किया है। हम अपनी आम बातचीत के दौरान भी दृश्य भाषा का प्रयोग करते हैं। मसलन हम लोग भी यहां या वहां बैठने के लिए उंगली से संकेत करते हैं। मौखिक भाषा को न जानने वालों या कम जानने वाले लोग संकेतों को ग्रहण करते हुए भाषाई आरोह और अवरोह के आधार पर पूरा अर्थ समझ जातें हैं। फ़िल्मों में दृश्य की ताकत मौखिक भाषा की बाधाओं को दूर कर उसे और ज्यादा संप्रेषणीय बना देती है इसलिए फिल्में हिंदी भाषा को न जानने वालों तक अपने अर्थ का संप्रेषण संभव कर पाती है। हिंदी फिल्मों की दृश्यता हिंदी भाषा के अर्थ प्रसार में सहायक रही है। भारत में प्रतीकों की प्रचुरता और प्राचीनता अर्थ संप्रेषणीय में कारगर सिद्ध हुई है। हिंदी फ़िल्मों ने इस प्रतीकात्मकता को अपनाकर अपनी संप्रेषणीयता गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में सुनिश्चित की है। दृश्य भाषा के विकास और प्रतीकात्मकता बुनावट के सहारे हिंदी, हिंदी फिल्मों के द्वारा उन जनसमूहों में समाहित और लोकप्रिय हुई जो किसी अन्य माध्यम द्वारा संभव न थी।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदी सिनेमा का योगदान

भाषा शिक्षण (सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना) के अनेक माध्यम है जिनमें से सिनेमा हिंदी शिक्षण का बहुत ही आकर्षक, मनोरंजक एवं सर्वाधिक सशक्त साधन है जो अपने गीतों, संवादों और दृश्यों के द्वारा बहुत कुछ समझा देता है। हिंदी को लोकप्रिय बनाने वाले माध्यमों में हिंदी सिनेमा सबसे सबल माध्यम है।

विदेशो में प्रदर्शित की जा रही हिंदी फिल्मों से अनायस ही हिंदी समृध्द होती जा रही है। हिंदी का एक वैश्विक और अंतर्राष्ट्रीय समृद्ध रुप विकसित हो चुका है। और पिछले कुछ वर्षों में हिंदी भाषा के विकास के पीछे फ़िल्म अभिनेताओं, निर्देशको, गीतकारों और उनकी फिल्मों का बहुत ही बड़ा योगदान है। बहुप्रचलित और स्वीकारी हुई हिंदी भाषा सिनेमा में सुनाई देती है। सिनेमा को जानने-समझने वाले विद्वान भी अब यह मानने लगे हैं कि सिनेमा की भाषा का प्रभाव वर्तमान ही नहीं वरन भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के दिशा निर्देशन में सहायक होगा।

भाषा-प्रसार उसके प्रयोक्ता-समूह की संस्कृति और जातीय प्रश्नों को साथ लेकर चला करता है। भारतीय सिनेमा निश्चय ही हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में अपनी विश्वव्यापी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। उनकी यह प्रक्रिया अत्यंत सहज, बोधगम्य, रोचक, संप्रेषणीय और ग्राह्य हैं। हिंदी यहाँ भाषा, साहित्य और जाति तीनों अर्थों में ली जा सकती है। जब हम भारतीय सिनेमा पर दृष्टिपात करते हैं तो भाषा का प्रचार-प्रसार, साहित्यिक कृतियों का फिल्मी रुपांतरण, हिंदी गीतों की लोकप्रियता, हिंदी की उपभाषाओं, बोलियों का सिनेमा और सांस्कृतिक एवं जातीय प्रश्नों को उभारने में भारतीय सिनेमा का योगदान जैसे मुद्दे महत्वपूर्ण ढंग से सामने आते हैं। हिंदी भाषा की संचारात्मकता, शैली, वैज्ञानिक अध्ययन, जन संप्रेषणीयता, पटकथा के निर्माण, संवाद लेखन, दृश्यात्मकता दृश्य भाषा, कोड निर्माण, संक्षिप्त कथन, बिंबधर्मिता, प्रतीकात्मकता, भाषा-दृश्य की अनुपातिकता आदि मानकों को भारतीय सिनेमा ने गढ़ा है। भारतीय सिनेमा हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति का लोकदूत बनकर लोगों तक पहुँचने की दिशा में अग्रसर है।

हिंदी सिनेमा और साहित्य

हिंदी फिल्मों ने हिंदी साहित्य को भी आम लोगों (जिनमे वे लोग भी शामिल हैं जो निरक्षर है या फिर हिंदी लिख-पढ़ नहीं सकते) तक पहुँचाने में सपफलता अर्जित की है। हिंदी साहित्य की कई महत्वपूर्ण रचनाओं जैसे- नदिया के पार, शतरंज के खिलाड़ी, तीसरी कसम, सूरज का सातवाँ घोड़ा, तमस, सारा आकाश पर फिल्में बनी हैं। हिंदी साहित्य का प्रचार-प्रसार विश्व भर में फिल्मों के माध्यम से हुआ है।

साहित्यिक कृतियों का सिनेमाई रूपांतरण साहित्य को नई संचारात्मक और संप्रेषण शक्ति प्रदान करता है। निरक्षर लोग और गैर हिंदी भाषी लोगों तक भी साहित्य की पहुँच हिंदी सिनेमा के फलस्वरूप हो बनी है। गौर से अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि भाषा साहित्य सृजन का मूल आधार है जबकि वहीं साहित्य जब सिनेमाई पर्दे पर आता है तो दृश्य उसके केंद्र में होता है। भाषाओं का व्याकरण सीमित होता है वहीं सिनेमा का व्याकरण बहुत ही व्यापक है।

निष्कर्ष

यह बात विचारणीय है कि हिंदी को भारत और भारत के बाहर लोकप्रिय बनाने में हिंदी सिनेमा की भूमिका के बारे में ज़्यादा चर्चा-परिचर्चा नही की जा रही है। हिंदी फ़िल्मों के ताक़त को अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों में देखा जा सकता है। दूसरी और तीसरी पीढ़ी के बहुत बड़ी संख्या वाले भारतीय छात्र हिंदी फ़िल्मों के संवादों और गीतों के माध्यम से हिंदी सीखते हैं। ऐसे छात्रोंको "हेरिटेज लर्नर" कहा जाता है। पश्चिमी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षक अपनी कक्षा में छात्रों को कई व्याकरण संबंधी जटिलताओं को समझाने के लिए हिंदी फ़िल्मों के कई तत्वों जैसे - गीत, लोकप्रिय संवादों के वीडिओ अंश, पोस्टर और ट्रेलर आदि को सम्मिलित करते हैं।

बेशक़, पूरा उप-महाद्वीप और दक्षिण एशियाई समुदाय हिंदी फ़िल्मों के बहुत बड़े अनुगामी हैं। पूरे विश्व भर के दक्षिण एशियाई डायस्पोरा के लोगों के लिए तो हिंदी फ़िल्में मनोरंजन का मुख्य स्रोत हैं। और अब तो फ़िल्मों की बदौलत हिंदी भाषा जापान में भी अपने लिए रास्ता बना रही है।इस बात को भी नकारा नही जा सकता कि लम्बे समय से बुद्धिज्म और प्राचीन भारतीय संस्कृति के कारण कई लोग हिंदी सीखने हेतु प्रोत्साहित हुए हैं। 'इंग्लिश-विंग्लिश', 'थ्री इडियट्स', 'रॉ वन', 'ओम शांति ओम' और अभी हाल मे ही 'धूम थ्री' नामक हिंदी फ़िल्में डब या सबटाइटल के साथ जापान में प्रदर्शित की गई।

हिंदी फ़िल्म उद्योग ने आम बोलचाल की एक मानक हिंदी को भारत और विदेशों में बसे बहुत बड़े जन-समूह के समक्ष प्रचारित किया है। हिंदी भाषा हिंदी सिनेमा के माध्यम से दुनिया भर के दूरदराज़ के एक बड़े भू-भाग में समझी जाने वाली भाषा स्वतः बन गई है। हिंदी भाषा को पूरे विश्व में लोकप्रिय बनाने में हिंदी सिनेमा के योगदान और महत्व पर ध्यान देने का समय अब आ गया है।

आधार ग्रंथ :

- विनय लाल व आशीष नंदी (सं), फ़िंगरप्रिन्टिंग पॉपुलर कल्चर: द मिथिक अँड दि आइकॉनिक इन इण्डियन सिनेमा, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2006में संकलित है।
- सिनेमा, भाषा, रेडियो: एक त्रिकोणीय इतिहास, कथादेश पत्रिका: जुलाई, 2012.
- Comrie, Bernard (2004), The World's Major Languages, Croom Helm.
- Bhatt, P.C. (2002), Hindi Shikshan, Tapish-Tanju enterprises, Indore.

फ़िल्म अनुवाद

प्रत्येक देश फिल्मों के अनुवाद के लिए अलग-अलग पद्धतियाँ अपनाता है। इस सिने-अनुवाद की डबिंग और सबटाइटलिंग दो मुख्य प्रणालियाँ हैं। कभी कभी टेलीविज़न अनुवाद की एक तीसरी छोटी प्रणाली- वॉइस ओवर को भी प्रयोग में लाया जाता है। किस फ़िल्म अनुवाद प्रणाली का चुनाव किया जाए, यह व्यक्तिगत निर्णय न हो कर उस राष्ट्र से जुड़े कई कारकों पर आधारित होता है। जैसे –

- ऐतिहासिक परिस्थितियाँ
- रीति-रिवाज
- तकनीकी (जिसके दर्शक अभ्यस्त हैं)
- कीमत
- साथ ही साथ अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में लक्ष्य संस्कृति व मूल संस्कृति दोनों की स्थिति ।

दृश्य-श्रव्य अनुवाद की कोई भी पद्धति अंततः किसी राष्ट्र की अस्मिता और उसकी मान्यताओं के विकास में एक अलग ही भूमिका अदा करता है। फ़िल्म अनुवाद में सांस्कृतिक मूल्यों का पारगमन होता है, परंतु इसको साहित्य में बहुत ही कम ध्यानाकर्षण मिला है और अनुवाद अध्ययन में शोध के क्षेत्रों में फ़िल्म अनुवाद सबसे दबा-कुचला क्षेत्र बना हुआ है।

यह आलेख केवल सिनेमा अनुवाद पर केंद्रित है, जिसका यह कतई भी मतलब नहीं है कि टेलीविज़न अनुवाद किसी भी दृष्टि में कम महत्व का है। असल में टेलीविज़न अनुवाद के विश्लेषण में आगे के शोध हेतु बहुत ही उत्कृष्ट सामग्री उपलब्ध है। यहाँ पर इसे केवल और केवल विषय की स्पष्टता व सुबोधता को बनाए रखने के लिए उपेक्षित किया जा रहा है।

आलेख के पहले भाग में ऊपर उल्लिखित अनुवाद प्रणाली और उनके वैश्विक वितरण पर चर्चा की गई है। अगले भाग में अनुवाद पद्धतियों को इतिहास और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है। आगे फ़िल्म अनुवाद प्रणाली का दर्शकों और संपूर्ण संस्कृति पर पड़ने वाले गहरे प्रभाव को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

आलेख के पहले भाग में ऊपर उल्लिखित अनुवाद प्रणाली और उनके वैश्विक वितरण पर चर्चा की गई है। अगले भाग में अनुवाद पद्धतियों को इतिहास और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है। आगे फ़िल्म अनुवाद प्रणाली का दर्शकों और संपूर्ण संस्कृति पर पड़ने वाले गहरे प्रभाव को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

आलेख का एक उद्देश्य इस ओर संकेत करना भी है कि – डबिंग घरेलूकरण (Domestication) का एक रूप है जबकि सबटाइटलिंग विदेशीकरण (Foreignisation) का एक रूप माना जा सकता है।

फ़िल्म अनुवाद के प्रकार

फ़िल्म अनुवाद के दो मुख्य प्रकार हैं :

- डबिंग
- सबटाइटलिंग

इनमे से प्रत्येक विधि मूल पाठ में अलग-अलग सीमा तक हस्तक्षेप करती है। डबिंग मूल पाठ में एक बड़ी सीमा तक हेरफेर करती है और घरेलूकरण के द्वारा इसे लक्ष्य (target) दर्शकों के अनुरूप

Praveen Singh
Megha Acharya

ढालती है। डबिंग वह विधि है जिसमे "विदेशी संवाद को फ़िल्म में अभिनेता के मुख और गतिविधियों के साथ व्यवस्थित किया जाता है" और इसका उद्देश्य दर्शकों को यह आभास कराना होता है कि मानो वे अभिनेताओं को वास्तव में लक्ष्य भाषा बोलते हुए सुन रहे हों।

सबटाइटलिंग समान्यत: पर्दे के निचले भाग पर समकालिक शीर्षकों के रूप में बोले गए मूल भाषा संवाद का लक्ष्य भाषा में अनुवाद आपूर्ति है। सबटाइटलिंग मूल पाठ में कम से कम संभव सीमा तक हेर-फेर करता है और लक्ष्य दर्शकों को विदेश को अनुभव करने तथा पूरे समय इसके 'विदेशीपन' से अवगत रहने में सक्षम बनाती है।

फ़िल्म अनुवाद : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

मूक फिल्मों के दौर में अनुवाद करना अपेक्षाकृत आसान था। फ़िल्म के दौरान हर एक मिनट में अंतर-शीर्षक (Intertitles) आ जाते थे। अतः लक्ष्य भाषा के शीर्षक आसानी से अनूदित कर वास्तविक शीर्षक के स्थान पर लगाए जा सकते थे।

लेकिन असल समस्या की शुरूआत हुई 1920 के बाद बोलती फिल्मों के आगमन के साथ। प्रारंभ में अमेरिकी फ़िल्म कंपनियों ने इस समस्या को सुलझाने के लिए एक ही फ़िल्म को (समान सेट और परिदृश्य, लेकिन अलग अभिनेताओं और निर्देशकों का प्रयोग करते हुए) विभिन्न भाषा संस्करणों में निर्मित करना शुरू किया । परंतु यह तरीका जल्द ही घाटे में तब्दील हो गया, क्योंकि ऐसी फिल्में कलात्मक दृष्टि से बहुत ही बुरी होती थीं और वे दर्शकों का दिल नही जीत पाती थीं। इसी उद्देश्य से फ्रांस में बनाए गए सभी स्टूडिओ ने अलग अलग भाषा संस्करण बनाने की जगह फिल्मों के डब किए हुए संस्करणों का निर्माण प्रारंभ कर दिया ।

इस नई खोज ने अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म बाजार में हालीवुड के बढ़ते प्रभुत्व के मध्य आने वाली सभी रुकावटों को दूर कर दिया। बोलती फिल्मों के दर्शक मूल संस्कृति और इसकी प्रकृति को लेकर बहुत ज्यादा सजग थे और इस प्रकार बोलती फिल्मों ने हालीवुड को अग्र पद पर बने रहने में मदद की।

बोलती फिल्मों के आगमन ने बड़े और छोटे, दोनों देशों पर दूरगामी प्रभाव डालने का प्रयास किया। और जैसे-जैसे फ़िल्म निर्माण की लागत में इजाफ़ा हुआ, छोटे देशों के लिए अपनी फिल्में निर्यात करना क्रमशः दुष्कर होने लगा और फिल्में उनके छोटे घरेलू बाजारों (Domestic Markets) तक सिमट कर रह गई। उनके घरेलू फ़िल्म निर्माण में कमी आने लगी, जिसका परिणाम फ़िल्म आयात में बढ़ोत्तरी के रूप में सामने आया । और जहाँ तक बड़े यूरोपियन देशों की बात की जाए तो वे "लगातार खुद की फिल्में निर्मित करने हेतु आवश्यक उपकरणों से लैस थे, परंतु उन्हे भी शक्तिशाली अमेरिकी प्रतिस्पर्धा का सामना करना था"।

बड़े और छोटे देशों के बीच इस बड़े अंतराल की परिस्थिति, आगे चल कर फ़िल्म अनुवाद की विधियों के चयन में परिलक्षित होने लगी । बड़े देश आयातित विदेशी फिल्मों के डबिंग की ओर प्रवृत हुए, जबकि छोटे देश सबटाइटलिंग की ओर। प्रारंभिक 1930 से 1950 के शुरुआती दौर तक अमेरिकन फ़िल्म कंपनियों ने संपूर्ण फ़िल्म उद्योग पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया क्योंकि उन्होने रिकॉर्डिंग उपकरणों पर अपना एकाधिकार जमा लिया था । द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिकन फ़िल्म उद्योग और ज्यादा फला-फूला इसके परिणाम स्वरूप, युद्ध के दौरान "यूरोपियन देशों में नई फिल्मों के साथ ही साथ युद्ध के दौरान निर्मित 2500 अमेरिकन फ़िल्मों की बाढ़ सी आ गई"। यूरोपियन अर्थव्यवस्था को इससे उबरने में थोड़ा समय लग गया और 1950 के दशक में बड़े देशों जैसे कि- फ्रांस, इटली, जर्मनी और स्पेन ने अपने अपने सीमा क्षेत्रों में अमेरिकन फिल्मों के प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से रक्षात्मक उपाय करने शुरू कर दिए। उदाहरण के लिए, घरेलू फ़िल्म निर्माण को बचाने के क्रम में आयात नियतांश (import quotas) लागू किया गया और कुछ देशों (फ्रांस, इटली) में आयातित फिल्मों पर विशेष कर (tax) लगाए गए जिसमें "अमेरिकन कंपनियों को मुनाफे की पूंजी को दुबारा स्थानीय स्तर पर ही पुनः लगाना पड़ता था"। और उसी दौरान फ्रांस, इटली, जर्मनी और स्पेन में घरेलू फ़िल्म निर्माण को सरकार की ओर से विभिन्न ऋण व सब्सिडी द्वारा अच्छी सहायता मिलने लगी। उस समय तक यह स्पष्ट हो गया था कि फिल्में अतिशय प्रभावशाली और लाभकारी माध्यम बन चुकी थीं और हर कोई उस माध्यम पर ज्यादा से ज्यादा अधिकार चाहता था। बहरहाल छोटे यूरोपियन देशों ने बड़े देशों की तुलना में बहुत कम संख्या में फिल्मों का निर्माण किया और अमेरिका व यूरोप से फिल्मों को आयातित करते रहे। और जहां तक बड़े देशों की बात करें तो,

उनकी सरकारों द्वारा चलाई गई सुरक्षात्मक नीतियों का परिणाम घरेलू फ़िल्म निर्माण मे बढ़ोत्तरी और विदेशी (मुख्यतः अमेरिकन) फ़िल्म आयात में गिरावट के रूप में सामने आया। उन नीतियों ने बड़े देशों में घरेलू फ़िल्म व आयातित फ़िल्म के अनुपात में भी सामान्य रूप से सुधार किया।

फ़िल्म अनुवाद : वैश्वीकरण के दौर में

"वैश्विक रूप से यह दौर है- जन संचार का, मल्टीमीडिया के अनुभवों का और एक ऐसे विश्व का जहाँ दर्शक नवीनतम विषयों को संस्कृतियों के आर-पार लगातार सांझा करने के अधिकार की मांग करता है, फिर चाहे वो फिल्में हो, गाने हों या किताब "। यही कारण है कि अमेरिकन फिल्मों की भारी मांग है और इसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बाजार अमेरिकन फिल्मों से पटा पड़ा है।

अनुवाद में सत्ता (Power) का मुद्दा समसामयिक सिनेमा के लिए विशेष तौर से प्रासंगिक और उपयुक्त दिखाई पड़ता है। अनुवाद पाठ्यों के नहीं बल्कि संस्कृतियों के मध्य घटित होता है। पाठ को विश्व के एक समग्र अंग के रूप में अनुभव किया जाता है न कि "भाषा के एक पृथक नमूने" के रूप में। फलस्वरूप अनुवाद की प्रक्रिया को परा सांस्कृतिक स्थानांतरण (cross cultural transfer) के रूप में देखा जाता है, जो मूल और लक्ष्य संस्कृति की प्रतिष्ठा के साथ ही साथ उनके पारस्परिक संबंधों द्वारा निर्धारित होती है।

अँग्रेजी-भाषी देशों और विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र की बाजार में ऊपरी पहुँच है और आज वो फ़िल्म उद्योग की डोर मनचाहे ढंग से खींच रहा है। "सामान्य रूप से देखें तो– एकदिशीय अंग्रेजीकरण, अन्य भाषाओं व संस्कृतियों के मुक़ाबले अँग्रेजी भाषा और एंग्लो-अमेरिकन संस्कृति का बढ़ता प्रभाव, वैश्वीकरण का पर्याय है"। एक रोचक बात जो अमेरिकी प्रभुत्व और अन्य संस्कृतियों के संबंध में उसकी छोटी सोच को सिद्ध करता है वह है- अकेडमी अवार्ड द्वारा प्रत्येक वर्ष दिया जाने वाला 'आस्कर'। वैश्विक ख्याति प्राप्त एक संस्था जहाँ ढेर सारी श्रेणियों के बीच केवल एक पुरस्कार सर्वश्रेष्ठ 'विदेशी फ़िल्म' की श्रेणी में दिया जाता है। यहाँ पर विदेशी का मतलब है कुछ भी जो अँग्रेजी नही है।

बहरहाल, केवल धन ही नहीं है जो अनुवाद विधि के चयन को निर्धारित करता है। अनुवाद रणनीति का चयन बड़े स्तर पर लक्ष्य संस्कृति और मूल संस्कृति के पारस्परिक रवैये पर भी निर्भर करता है। यह भी असामान्य बात नहीं है कि राजनीतिक कारक भी चयन प्रणाली को निर्धारित करता है। पश्चिमी यूरोपियन देश खुले तौर पर अमेरिकन फिल्मों का विरोध नही करते। जबकि अरब देशों में अमेरिकन मानकों और आदतों को अपनाने के प्रति एक जबर्दस्त प्रतिरोध है।

हालीवुड की तुलना और विरोध में हमारी भारतीय सिनेमैटोग्राफी जो 'बॉलीवुड' के नाम से विकसित हुई और अमेरिकन विरोधी मजबूत रवैये के साथ अब यह भारत के साथ ही साथ अन्य देशों में भी फल-फूल रही है। इसी को देखते हुए कुछ विशेषज्ञ यह दावा करते हैं कि "वैश्वीकरण अमेरिकीकरण का पर्याय मात्र नही है इसका अपना अर्थ है... और हाल ही में बढ़ता हुआ भारतीय मनोरंजन उद्योग इस बात को सिद्ध करता है"। इसके अलावा मध्य-पूर्व का अमेरिकन-विरोधी होना बॉलीवुड के पक्ष में रहा है। "भारतीय फिल्मों की अ-अमेरिकी गुणवत्ता की वजह से इसके दर्शकों में इजाफा हुआ है"। यह सामान्य सी बात है कि अधिकांश लोग खुद से जुड़े मुद्दों या विषयों से संबंधित फिल्मों को ज़्यादातर देखना पसंद करते हैं।

निष्कर्ष रूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि फिल्मों का अनुवाद भाषा विज्ञान की एक समस्या मात्र नही है बल्कि एक क्रियाकलाप है जो "बड़े पैमाने पर ग्राह्य संस्कृति की कार्यशील आवश्यकता की मांग के अनुकूल होती है न कि मूल फ़िल्म की मांगों के"।

डबिंग :

फ़िल्म अनुवाद की सभी विधियों में, डबिंग एक ऐसा प्रकार है जो फ़िल्म के वास्तविक रूप-रेखा के साथ सर्वाधिक हस्तक्षेप करता है। अतः कई आलोचक इसकी प्रमाणिकता को लेकर आपत्ति जताते हैं। सैद्धांतिक रूप से कुछ लोगों द्वारा डबिंग को सबटाइटलिंग की अपेक्षा कम प्रामाणिक होना माना गया है क्योंकि एक भिन्न आवाज़ के संयोजन द्वारा वास्तविक प्रदर्शन में परिवर्तन हो जाता है। साउंड ट्रैक अपरिहार्य रूप से पुनर्प्रक्रिया से गुजरता है और दर्शकों के लिए विश्वास करना और नई आवाज़ों

(कई बार तो सुप्रसिद्ध अभिनेताओं कीआवाज़ों) पर भरोसा करना बहुत कठिन होता है। इसीलिए कई डबिंग देशों में कुछ डबिंग कलाकार किसी अभिनेता विशेष के लिए लगातार प्रयोग किए जाते हैं। इसके कारण अभिनेता की वास्तविक आवाज़ सुनने पर कई बार तो बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो जाती है- दर्शक असंतुष्ट हो जातें हैं।

डबिंग में अनुवादक को न केवल नाटकीय समझ होनी चाहिए बल्कि स्वर विज्ञानीय समकालिकता (phonological synchronisation) के प्रति ईमानदार होना होता है। यह माना जाता है कि देखने की प्रक्रिया के लिए "केवल गतिशील छवियों और ध्वनि का कूट अनुवाद (Decoding) आवश्यक है", इस अर्थ में डबिंग वास्तविक के अधिक करीब है और सचमुच में ज्यादा प्रामाणिक नजर आती है।

डबिंग में, वास्तविक अभिनेता जो कहते हैं, जिस प्रकार वे अपने होंठ हिलाते हैं और डब की गई आवाज़ के मध्य निरंतर असंगतियाँ होती हैं। वह दर्शको को बहुत प्रभावित करता है, ज़्यादातर अवचेतन स्तर पर प्रभावित करता है। तथापि, हाल की तकनीकी ने नए अनूदित संवाद के अनुरूप वास्तविक अभिनेता के होंठों की गति में डिजिटल फेर-बदल करने का तरीका विकसित कर लिया है। छवि के साथ हल्का सा परिवर्तन कर डब की हुई पटकथा के अनुरूप चरित्र के होंठों की गति के सामंजस्य के इस तरीके ने प्रशंसनीय परिणाम दिया है। अंततः होंठो की गति और संवाद के बीच असंगति (खास कर के क्लोज अप्स में) की समस्या को हल किया जा सकता है। और तो और अब वास्तविक अभिनेताओं की आवाजें अलग ट्रैक पर होती हैं जिसके कारण वास्तविक पार्श्व संगीत (background score) और साथ ही साथ संगीत और विशेष प्रभाव (special effects) सुरक्षित प्राप्त किए जा सकतें हैं और इस प्रकार उन्हे नई डब की हुई आवाज़ों के साथ निर्विघ्न रूप से सम्मिश्रित किया जा सकता है।

लेकिन एक ओर जहाँ इससे डब फिल्मों की गुणवत्ता में सुधार होगा, वहीं दूसरी ओर इससे वास्तविक फ़िल्म के साथ दखलंदाज़ी और ज्यादा बढ़ जाएगी। निःसंदेह डबिंग लक्ष्य संस्कृति केंद्रित एक शक्तिशाली उपकरण है जो मूल पाठ को जितना संभव होता है लक्ष्य संस्कृति के मानकों के अनुकूल बनाती है।

डब की गई फिल्में, तत्काल में दर्शकों को परिवर्तित उत्पाद की जगह नवीन उत्पाद के रूप में दिखाई दे सकती हैं। डब की हुई फ़िल्म सिर्फ फ़िल्म होने के बजाय एक 'विदेशी' फ़िल्म होकर रह जाती है। अतः अंतरराष्ट्रीय बाजार में फ़िल्म 'राष्ट्र व संस्कृति से परे उत्पाद' के रूप में कार्य करता है। यह कच्चा माल बन जाता है जो डबिंग द्वारा उपभोक्ता राष्ट्रों के विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में पुनर्नामांकित होता है। ऊपर पहले ही स्थापित किया जा चुका है कि ऐसे दर्शक जो डबिंग के अभ्यस्त हैं, जब अपनी खुद की भाषा सुनते हैं तो वे अपनी भाषा के महत्व को लेकर काफ़ी आश्वस्त अनुभव करते हैं। इस प्रकार डबिंग अन्यत्व के बोध को कम करता है और घरेलूकरण का एक बहुत ही उत्कृष्ट उदाहरण है।

घरेलूकरण (Domestication) को यहाँ पर इस प्रकार समझा जाए लक्ष्य पाठ के विदेशीपन को कम से कम करने के क्रम में पारदर्शी, धारा प्रवाह, परोक्ष शैली में अनुवाद करना । इसका परिणाम यह है कि प्रभावी लक्ष्य संस्कृति में सभी विदेशी तत्वों का समावेश हुआ और इस प्रकार लक्ष्य दर्शकों को मूल संस्कृति के निर्णायक विशेषताओं से वंचित किया जा रहा है।

इसे अन्य तरीके से देखें तो, डोमेस्टीकेशन या घरेलूकरण एक अभिगम है जो लेखक/ रचनाकार से पाठक/दर्शक की ओर गति करते हुए मूल संस्कृति पर लक्ष्य संस्कृति के विशेषाधिकार का समर्थन करता है। फ़िल्म अनुवाद एक प्रक्रिया है जिसमे न केवल किसी पाठ का अनुवाद सम्मिलित है बल्कि अन्य संबंधित क्रियाएँ भी शामिल होती हैं। अनुवाद को अक्सर संदेह के साथ देखा जाता है क्योंकि यह अनिवार्य रूप से विदेशी पाठ को देशी बनाता है और उन्हे घरेलू क्षेत्र विशेष के सुबोगम्य भाषा विज्ञान और सांस्कृतिक मूल्यों से अंकित करता है।

अंकन की यह प्रक्रिया अनुवाद की रचना, वितरण और श्रवण सभी चरणों में परिचालित होती है। इसकी शुरुआत होती है अनुवाद हेतु विदेशी पाठ के चुनाव से, विदेशी पाठ और साहित्य के बहिष्करण से, जो कि विशेष घरेलू रुचियों के प्रति जवाबदेह होती है। अनुवाद रणनीति के विकास में यह और बलपूर्वक जारी रहता है जिसमे विदेशी पाठ को घरेलू बोलियों और भाषाओं में पुनर्लिखित किया जाता है तथा विशेष घरेलू मान्यताओं का चुनाव व विदेशी मान्यताओं का बहिष्करण हमेशा होता है। आगे चल कर यह विविध रूपों (जिसमे अनुवाद प्रकाशित, समीक्षित, पढ़ा और पढ़ाया जाता है) द्वारा और अधिक जटिल होती जाती है तथा सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रभाव डालते हुए अलग-अलग संस्थागत संदर्भों और सामाजिक अवस्थाओं के अनुसार बदलती है।

सबटाइटलिंग :

सबटाइटलिंग वास्तविक पाठ के साथ कम से कम हस्तक्षेप करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यह अत्याधिक उदासीन व अल्पतम मध्यस्थ करने वाली विधि है। इसलिए अन्य अनुवाद विधियों की अपेक्षा सबटाइटलिंग ही है जो विदेशी भाषा के स्वाद को, इसके मिज़ाज को और एक अलग संस्कृति के बोध को अनुभव करने मे सर्वाधिक योगदान देती है। और ऐसा मुख्यतः इसलिए होता है कि वास्तविक साउंडट्रैक और संवादों के साथ छेड़छाड़ नही की जाती जैसा कि डबिंग में होता है।

इसके अतिरिक्त चरित्रों की वास्तविक आवाज़ सुनना न केवल संवाद विशेष या कथावस्तु की संरचना की समझ को आसान बनाता है बल्कि वर्ग (class), स्थिति (status) और रिश्तों का सूक्ष्म संकेत भी देता है। यद्यपि सबटाइटलिंग की मूलभूत प्रकृति के कारण संवादों की लंबाई में सार्थक कमी की जाती है लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि वास्तविक संवादों को सुन कर इस हानि की क्षतिपूर्ति की जा सकती है।

सबटाइटलिंग अनुवाद की सबसे ज्यादा पसंद की जाने वाली विधि बनती जा रही है। इसकी वजह आर्थिक तो है ही क्योंकि फ़िल्म उद्योग की बढ़ती आवश्यकताओं को सबटाइटलिंग द्वारा पूरा करना बहुत ही सस्ता पड़ता है जो कि आर्थिक रूप से ज्यादा किफायती है और इसकी निर्माण प्रक्रिया भी आसान है। इसके अलावा सबटाइटलिंग देशों में दर्शकों के लिए वास्तविक फ़िल्म की विश्वसनीयता ज्यादा मायने रखती है जबकि आर्थिक फायदे द्वितीयक हैं। इन दर्शकों के लिए सबटाइटलिंग डबिंग की अपेक्षा ज्यादा विश्वसनीय तरीका है क्योंकि अनूदित फ़िल्म के विदेशीपन को दर्शक भूलने नहीं पाते और पूरी फ़िल्म के दौरान वास्तविक संवादों को सुनते रहने से इसकी विश्वसनीयता उनके ध्यान में बनी रहती है।

आधुनिक विश्व में इंगलिश लिंगुआ फ्रैंका हो गयी है। हाल के कुछ वर्षों में इस भाषा के ज्ञान में नाटकीय रूप से बढ़ोत्तरी हुई है और अब यह और ज्यादा फ़ैल गई है। सबटाइटलिंग पसंद करने वाले देशों में अधिकांश लोग इसलिए सिनेमा घरों में जाते हैं कि उन्हें वास्तविक अंग्रेजी संवाद सुनने का मौका मिलता है और वे सबटाइटल का उपयोग तभी करते हैं जब उन्हें यह आवश्यक प्रतीत होता है। इस परिस्थिति के कारण ऐसे लोगों की समीक्षात्मक शक्ति में बढोत्तरी हुई है और सबटाइटलिंग के क्षेत्र में विशेषज्ञ के रूप में स्थापित हो रहें हैं जो कि वो वास्तव में होते नहीं हैं।

जाहिर सी बात है कि डबिंग करने वालों को इस तरह की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता क्योंकि दर्शकों को वास्तविक संवादों को उनके अनूदित से तुलना करने का मौका ही नहीं मिल पाता। कई दशकों से विश्व के लगभग प्रत्येक देश ने फ़िल्म निर्माण की और विदेशी निर्माण को लक्ष्य भाषा में रूपांतरित करने की अपनी अलग चलन विकसित की है। कई देशों की उनकी खुद की अलग शैली को पहचान मिली है और जल्द ही विश्व भर के दर्शको द्वारा पसंद कर लिया गया। सबटाइटलिंग के रूप में अनुवाद अन्य संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में दर्शकों के अपेक्षाओं और जिज्ञासा को पूरा करते हुए फ़िल्म की वास्तविकता को सुनिश्चित करता है और इस प्रकार फिल्मों की विदेशीपन को भी सुनिश्चित करता है। इसके साथ ही डबिंग के ठीक विपरीत इसमे वास्तविक ध्वनि पथ (साउंड ट्रैक) को सुरक्षित रखा जाता है और इस प्रकार समग्र प्रदर्शन की अखंडता बनी रहती है। इस प्रकार किसी विशेष कलाकार की चारित्रिक विशेषताएँ, शैली यथावत् बनी रहती है।

फ़िल्म के दौरान कई बार उसके पार्श्व में कुछ अशाब्दिक चिन्ह दिखाई देतें हैं उदहारण के लिए – नोटिस, टोकन, ट्रेडमार्क, या सड़क के चिन्ह । डबिंग में इन्हें उपेक्षित कर दिया जाता है जबकि सबटाइटलिंग में इनका भी विशेष ध्यान रखा जाता है। डब करने वाले की अपेक्षा सबटाइटलर के लिए भी किसी चिन्ह के अर्थ को लक्ष्य भाषा का एक सबटाइटल डाल कर उसे समझाना ज्यादा आसान होता है। इसे बोल्ड कैपिटल लेटर या इटालिक फॉण्ट का उपयोग किया जाता है जिससे यह संवाद से अलग दिखाई देता है। सबटाइटलिंग में वाक् माध्यम से लिखित माध्यम में परिवर्तन होता है इस तरह से फ़िल्म के विदेशीपन में वृद्धि होती है। सबटाइटल, फ़िल्म को दृश्य-श्रव्य माध्यम से और अधिक साहित्यिक माध्यम में बदल देता है जिसके कारण डब की गई फ़िल्म की अपेक्षा यह बड़े स्तर पर दर्शकों के ध्यान की माँग करती है।

अनुवादक न केवल अनुवाद करता है बल्कि यह भी निश्चित करता है कि किस टुकड़े या भाग को बाहर निकालना है, लक्ष्य दर्शकों के लिए उसमे से क्या अप्रासंगिक है और क्या अत्यावश्यक है। पटकथा के सत्व को संप्रेषित करने के प्रयास में, अनुवादक अक्सर भूल जातें हैं कि मुख्य कथानक के केवल संवाद में ही फ़िल्म का सार संघटित नहीं होता है। अन्य कारकों जैसे- विभिन्न बोलियाँ, मुहावरे, स्वरस्तर या शिष्टता की अभिव्यक्ति आदि भी किसी कार्य विशेष को पूर्ण रूप से समझने के लिए समान

रूप से महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

ऐसे उदाहरण भी देखने में आते हैं जिनमे सबटाइटलर कई ऐसे सबटाइटल देतें हैं जो पहले से ही प्रकट और साफ़ होतें हैं। उदाहरण के लिए– कुछ आमतौर पर समझ में आ जाने वाली अभिव्यक्तियाँ जैसे "यस" या "नो" अनावश्यक रूप से अनगिनत बार दिए जातें हैं। इसके अलावा विभिन्न ध्वनि-अनुकरणिक अभिव्यक्तियाँ जैसे कि- "गर्रर ! गर्रर !"। ये सब कम से कम कुछ दर्शकों को तो असंतुष्ट कर ही देती है। इसके अलावा कुछ ध्वनि-अनुकरणिक अभिव्यक्तियाँ अलग-अलग भाषाओं में अलग अलग तरह से अभिव्यक्त होती हैं। अतः स्पष्ट रूप से अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट समझ आता है कि सबटाइटलिंग में मूल संस्कृति के निर्णायक भूमिका पर बल दिया जाता है, विदेशी पहचान को उभारा जाता है और लक्ष्य संस्कृति के प्रभाव को कम किया जाता है। इस प्रकार सबटाइटलिंग को विदेशीकरण का एक उपकरण कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

फिल्में मान्यताओं, विचारों और सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए जबर्दस्त रूप से प्रभावशाली और अतिशय शक्तिशाली साधन हो सकती हैं । जैसा कि फ़िल्म एक बहुसांकेतिक (polysemiotic) माध्यम है जो अर्थ को कई रूपो जैसे- तस्वीर, संवाद और संगीत में स्थानांतरित करता है। इसमें विभिन्न संस्कृतियाँ उपस्थित होती हैं न केवल मौखिक रूप से बल्कि दृश्य और श्रव्य रूप से । वे वस्तुएँ जो संस्कृति-विशेष के रूप प्रयोग होतें हैं वो फैलने को प्रवृत होते हैं और अन्य संस्कृतियों पर अतिक्रमण करते हैं। फ़िल्म अनुवाद विधि के चुनाव का सबसे बड़ा योगदान है- लक्ष्य संस्कृति में मूल भाषा की फिल्मों का प्रवेश।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि फ़िल्म अनुवाद की कोई भी विधि ऐसी नहीं है जो सार्वभौमिक हो और सबके लिए अच्छी हो। और जैसा कि ऊपर कहा गया है कि फ़िल्म अनुवाद की विधियाँ विभिन्न कारकों पर आधारित हैं, जैसे- इतिहास, उस देश में फ़िल्म अनुवाद की परंपरा, दर्शकों से संबंधित विभिन्न कारकों पर, प्रस्तुत फ़िल्म के प्रकार पर, साथ ही साथ उपलब्ध आर्थिक स्रोतों पर। इन कारकों के साथ ही साथ मूल और लक्ष्य संस्कृति के बीच पारस्परिक संबंध का भी महत्त्व है क्योंकि यह भी अनुवाद प्रकिया को प्रभावित करता है। फ़िल्म अनुवाद की दो प्रमुख विधियों डबिंग और सबटाइटलिंग के सन्दर्भ में यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ये क्रमशः घरेलूकरण और विदेशीकरण के दो विपरीत बिंदुओं से घिरे हैं।

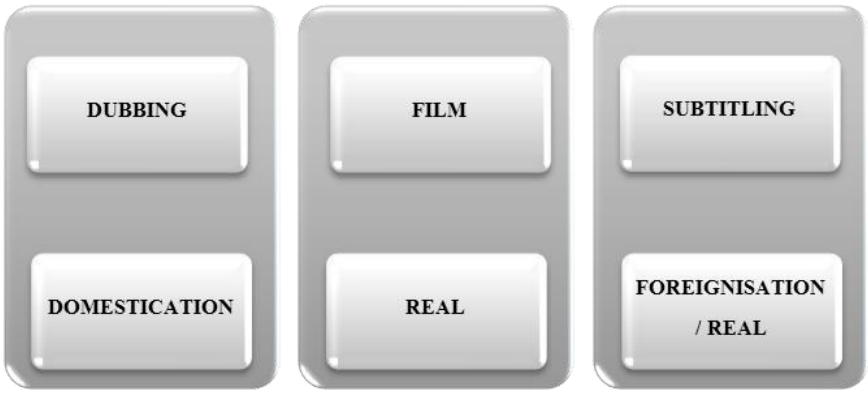

References:

- Cork, Ireland : Cork University Press. Danan, Martine (1991) "Dubbing as an Expression of Nationalism" Meta, XXXVI 4, pp.। 606-614.
- Delabastita, Dirk (1990) "Translation and the mass media".
- "Audiovisual Translation at the Dawn of the Digital Age : Prospects and Potentials" Translation Journal, vol.3, no.3.

- "Subtitles of Motion Pictures" Film Quarterly, spring 1999.
- Power, Carla and Sudip Mazumdar (2000) "Bollywood goes global" Newsweek Feb. 28, 2000, pp. 52-58.
- Mera, Miguel (1998) "Read my lips : Re-evaluating subtitling and dubbing in Europe" Links & Letters 6, 1999, pp.73-85.
- Danan, Martine (1991) "Dubbing as an Expression of Nationalism" Meta, XXXVI 4, pp. 606-614.
- Snell-Horn by, Mary (1988) Translation Studies.
- Cronin, Michael (1996) Translating Ireland.
- Dries, Josephine (1995) "Breaking Eastern European Barriers" Sequentia, vol. II, No. 4 June/ July/August 95, p. 6.

मराठी क्रियारूप विश्लेषक प्रणाली का विकास

सारांश मराठी भाषा की क्रिया के मूल रूपों को प्रदर्शित करने एवं उन रूपों की विशेषताएं बताने के लिए एक प्रणाली का विकास किया गया है, जिसका नाम 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक' है। इस प्रणाली के विकास के लिए डाटाबेस की आवश्यकता होगी जिसके लिए एम.एस.एक्सेस का प्रयोग किया गया है। इस प्रणाली में कोडिंग करने के लिए सी. शार्प प्रोग्रामिंग भाषा का प्रयोग किया गया है, जिसमें यूनिकोड के देवनागरी में काम करने की सुविधा है। 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक' प्रणाली का उपयोग प्राकृतिक भाषा संसाधन जैसे- मशीनी अनुवाद, पाठ संसाधन, सूचना प्रत्यानयन प्रणाली आदि क्षेत्र में होगी।

प्रफुल्ल भगवान मेश्राम
पीएच.डी. शोधार्थी
हिंदी भाषा प्रौद्योगिकी विभाग
भाषा विद्यापीठ
Email-id- pmesh-ram87@gmail.com

शोध का उद्देश्य

मराठी भाषा की क्रिया के मूल रूप एवं उनसे जुड़ने वाले प्रत्ययों का अध्ययन विश्लेषण करना

क्रिया रूप एवं प्रत्ययों का मशीन द्वारा संश्लेषण करना

मराठी भाषा के लिए क्रिया रूप विश्लेषक का विकास करना

मराठी भाषा से संबंधित अन्य भाषाओं में अनुवाद करने के लिए इस प्रणाली का विकास करना

शोध प्रविधि

इस शोध में मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध प्राविधि का प्रयोग किया गया है। मात्रात्मक शोध प्राविधि द्वारा मूल क्रिया रूप एवं उससे जुड़ने वाले प्रत्यय को संख्याओं के आधार पर संकलित किया गया है। मराठी भाषा से संबंधित 37 मूल क्रिया रूप एवं 48 प्रत्ययों का अध्ययन किया गया है। इसमें द्वितीयक सामग्री के रूप में विभिन्न पुस्तक, समाचार पत्र और शोध ग्रंथों का उपयोग किया गया है।

उपयोगिता

'मराठी क्रियारूप विश्लेषक' प्रणाली की उपयोगिता मराठी भाषा से संबंधित प्राकृतिक भाषा संसाधन के क्षेत्र जैसे- मशीनी अनुवाद, सुचना प्रत्यानयन प्रणाली, पाठ संसाधन आदि क्षेत्रों में होगी।

शोध का विस्तार एवं सीमाएं

इस शोध-पत्र में केवल कुछ धातुओं को तथा कुछ कियारूपों को लेकर ही काम किया गया है सभी क्रियारूपों को नहीं लिया गया। यह प्रारंभिक कार्य हैं जिसमें और अधिक काम किया जा सकता है किंतु समय के अभाव के कारण इस पर अधिक काम करना अभी संभव नहीं था तथा आगे इस पर मैं या कोई भी भाषाविज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी, संगणकीय भाषाविज्ञान से संबंधित विद्यार्थी या शोधकर्ता इस विषय से संबंधित क्रिया को लेकर इसका शब्द, पदबंध तथा वाक्य स्तर पर भी विकास कर सकता है। इस लघु शोध के द्वारा विकसित 'मराठी क्रिया रूप विश्लेषक' प्रणाली की कुछ सीमाएं हैं जो निम्नानुसार हैं-

इस शोध द्वारा विकसित 'क्रिया रूप विश्लेषक' प्रणाली के द्वारा एक क्रिया के कितने रूप बन सकते हैं इसे बताया जाएगा। इसके लिए प्रणाली को इनपुट के रूप में क्रिया के मूल रूप (धातु) को

दिया जाएगा, जिसके कुल 35 क्रियारूप दिखाएगा। इसमें से जिस क्रियारूपों पर क्लिक करेंगे, उस क्रियारूप से संबंधित काल, लिंग, वचन, पुरुष आदि विशेषताओं को जान सकेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य सूचनाएँ , जैसे- वृत्ति, पक्ष आदि के बारे में सूचना नहीं प्राप्त होगी। यदि इनपुट दिया हुआ शब्द डाटाबेस में नहीं होगा तब उस शब्द के रूप नहीं बताएगा। अतः इस पर और विस्तार से काम किया जा सकता है।

प्रस्तावना

एक तरफ भाषा संपूर्ण मानव जीवन में वैयक्तिक और सामाजिक अस्तित्व से जुड़ी रहती है जो मानव की सभ्यता एवं संस्कृति की परिचायक होती है, तो दूसरी ओर प्रौद्योगिकी अपने मौलिक विकास में मनुष्य के इतिहास, अवसर और आवश्यकतानुरूप शोध व अविष्कारों को करने की क्षमता से जुड़ा होती है। भाषाविज्ञान भाषा का एक व्यवस्थित, संरचित, वस्तुनिष्ठ अध्ययन करता है। 'भाषाविज्ञान' 'प्रौद्योगिकी' के योग से नए विषय 'भाषा प्रौद्योगिकी' (Language Technology), संगणकीय भाषाविज्ञान (Computational Linguistics) के रूप में प्रकट हुए हैं, जो भाषाविज्ञान की अनुप्रयुक्त शाखा के रूप में माने जाते हैं। 'भाषा प्रौद्योगिकी' एक अंतरानुशासनिक विषय है जिसके केंद्र में 'भाषा' शब्द को भाषाविज्ञान से लिया गया है, वही 'प्रौद्योगिकी' भूमंडलीकरण की उपज उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के माँग की देन है। भाषा को प्रौद्योगिकी से जोड़ने की अवधारणा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शुरू होती है, जब मित्र राष्ट्र और सौराष्ट्र के सैनिकों को प्रशिक्षण देने की बात आती है तो भाषा एक समस्या उत्पन्न कर देती है। तब से ही भाषा को मशीन से जोड़कर उपयोग में लाने की अवधारणा जन्म लेती है। भाषा प्रौद्योगिकी के माध्यम से प्राकृतिक भाषाओं को मशीन (कंप्यूटर) में स्थापित करने का कार्य किया जा रहा है जिसमें देश और विदेश के कई संस्थान कार्यरत है। भाषा एक जटिल संरचना होने के कारन इसे मशीन में स्थापित करना बहुत ही कठिन कार्य है।

भाषाविज्ञान भाषा में पाई जानेवाली विभिन्न इकाइयों एवं उनकी व्यवस्था की वस्तुनिष्ठ व्याख्या करता है। भाषाविज्ञान ने पिछले 150 वर्षों में महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। इस क्रम में भाषा विश्लेषण से संबंधित अनेक सिद्धांतो एवं मॉडलों का विकास हुआ है। इन सिद्धांतो एवं मॉडलों ने भाषिक विश्लेषण को सूक्ष्मता एवं गहनता प्रदान की है। इस कारण विश्लेषण से प्राप्त भाषिक ज्ञान के अनुप्रयोग के क्षेत्रों में व्यापकता एवं वैविध्य का समावेश हुआ है।

आधुनिक युग तकनीकी का युग है जिसमें कंप्यूटर, इंटरनेट एवं मोबाइल फोन ने संचार एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति पैदा कर दी है। इन साधनों के आगमन से भाषा अब दो या अधिक व्यक्तियों के बीच केवल सामान्य व्यवहार की वस्तु नहीं रही, बल्कि इसके साथ एक तकनीकी आयाम भी जुड़ गया है। इस तकनीकी आयाम ने मानव तथा मशीन के बीच भाषिक संप्रेषण संबंधी चिंतन के एक नए क्षेत्र का निर्माण किया है, जिस पर वर्तमान में वैश्विक स्तर पर कार्य चल रहा है। इस कार्य के लिए भाषा संबंधी ज्ञान को मशीन में स्थापित करते हुए अनेक टूल्स, प्रणालियों एवं साफ्टवेयरों का विकास किया जा रहा है। इसके लिए प्रोग्रामिंग भाषाओं एवं डाटाबेस प्रबंधन प्रणाली का ज्ञान होना आवश्यक है।

भाषिक ज्ञान के तकनीकी अनुप्रयोग का अर्थ संगणक या संगणकीय मशीनों में भाषिक ज्ञान के अनुप्रयोग से है, जिससे उन मशीनों का प्रयोग भाषा व्यवहार के विविध क्षेत्रों में किया जा सके। इस कार्य को तकनीकी रुप से 'प्राकृतिक भाषा संसाधन' (Natural Language Processing : NLP) कहा जाता है।

मानव भाषाओं की व्यवस्था को मशीन में स्थापित करना अत्यंत जटिल कार्य है, क्योंकि (संगणक) मशीन द्वारा जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे मशीनी भाषा कहते हैं। इस भाषा में सभी प्रकार की सूचनाओं को '0' और '1' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिसको समझना साधारण मनुष्यों के लिए असाध्य है और मशीनों द्वारा मानव भाषाओं को सीधे-सीधे समझ पाना संभव नहीं है। इस समस्या के कारण मानव मशीन के बीच आदेशों एवं कार्यों के आदान-प्रदान के लिए पिछले तीन-चार

दशकों में कुछ विशेष प्रकार की भाषाओं का विकास किया गया है जिन्हें सामान्यतः 'उच्चस्तरीय भाषाएं' (High Level Languages) या 'प्रोग्रामिंग भाषाएं' (Programming Languages) कहा जाता है। यह भाषाएं प्रयोगकर्ता को कुछ विशिष्ट संरचनाओं के माध्यम से आदेश देने की सुविधा प्रदान करती हैं। इनके माध्यम से मानव भाषाओं के ज्ञान को समुचित मात्रा में एवं सुव्यवस्थित रूप से स्थापित करते हुए मशीनों या संगणकों को मानव भाषाओं को समझने में सक्षम बनाया जा सकता है।

मराठी भाषा संस्कृत से प्रभावित है। मराठी भाषा के वाक्यों में क्रिया केंद्रीय घटक होती है जो पूरी वाक्य रचना को नियंत्रित करती है। क्रिया के द्वारा ही वाक्य में किसी कार्य को करने या होने, गति, अस्तिव, भाव, व्यक्ति व वस्तु आदि का बोध होता है, या इनके बारे में सूचना मिलती है।

जैसे – मी जातो.
तू चल.
सीता ने आंबा खाल्ला.
परमेश्वर आहे.

उपर्युक्त वाक्यों में 'जातो', 'चल', 'खाल्ला', 'आहे' आदि क्रियाएँ हैं।

भाषा में स्वनिम, रुपिम, शब्द, पदबंध, उपवाक्य एवं प्रोक्ति भाषिक इकाइयाँ हैं, जिनमें स्वनिम को छोड़कर शेष सभी इकाइयाँ अर्थ को धारण करती है। भाषाविज्ञान में इन सभी का विश्लेषण करते हुए प्रत्येक स्तर पर प्राप्त भाषिक इकाइयों और उनकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। इस ज्ञान को मशीन में स्थापित करने के लिए इसे तार्किक अभिव्यक्तियों (Logical Expressions) में ढाला जाता है। इसके लिए किसी न किसी संगणकीय व्याकरणिक फ्रेमवर्क (Computational Grammatical Framework) की आवश्यकता पड़ती है। इस भाषिक ज्ञान को मशीन में स्थापित करने की दो विधियाँ है- समस्त ज्ञान को एकीकृत रूप से स्थापित करना अथवा प्रत्येक भाषिक इकाई या भाषिक स्तर से जुड़े ज्ञान को स्थापित कर अलग-अलग टूल्स का विकास करना और बाद में सभी का आवश्यकता के अनुसार एक स्थान पर प्रयोग करना।

मशीन में मानव भाषाओं के ज्ञान को स्थापित करने की दो विधियाँ है :

कॉर्पस आधारित विधि (Corpus-based Method) और
नियम आधारित विधि (Rule-based Method)।

कॉर्पस आधारित विधि द्वारा किसी भाषा के भाषिक ज्ञान को मशीन में स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम भाषा-व्यवहार के सभी क्षेत्रों से उस भाषा के प्रामाणिक पाठों को संग्रहीत किया जाता है जिसमें लाखों वाक्य होते हैं। इसके पश्चात विविध भाषिक एवं सांख्यिकीय युक्तियों का प्रयोग करते हुए उनके माध्यम से मशीन को संबंधित भाषा में संसाधन के योग्य बनाया जाता है। नियम आधारित विधि में भाषिक इकाइयों (मुख्यतः शब्द स्तरीय इकाइयों) को संग्रहीत किया जाता है और उन्हें संसाधित करने में सक्षम बनाया जाता है। इस कार्य के लिए प्रोग्रामिंग भाषा और डाटाबेस प्रबंधन प्रणाली की आवश्यकता होती है।

क्रिया वाक्य में केंद्रीय घटक होती है जो पूरी वाक्य रचना को नियंत्रित करती है, जिसके द्वारा किसी कार्य के होने या करने, किसी व्यक्ति, वस्तु, भाव आदि के बारे में सूचना प्राप्त होती है। क्रिया के मूल रूप को 'धातु' कहा जाता है। मराठी में धातु के साथ 'णे' प्रत्यय जुड़कर जिस क्रियारूप का निर्माण होता है उसे क्रिया का साधारण रूप कहा जाता है जिसके माध्यम से कोश में उसका अर्थ जान सकते है। एक ही धातु या क्रिया के मूल रूप को विभिन्न प्रत्यय जुड़कर उसके अनेक क्रिया रूप बनाएँ जा सकते हैं। क्रिया के मूल रूप के साथ जब कोई प्रत्यय जुड़कर क्रियारूप का निर्माण किया जाता है तब उस क्रियारूप के द्वारा अलग-अलग व्याकरणिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

जैसे – 'जा' (मूल रूप) राम जातो.

इस वाक्य में 'जातो' क्रिया है जिसमें 'जा' धातु (मुख्य क्रिया), तो (प्रत्यय) जिसमें 'ओ' से कई व्याकरणिक सूचनाएँ मिलती हैं – जैसे – काल (वर्तमान), लिंग (पुल्लिंग), वचन (एकवचन), पक्ष (अपूर्ण पक्ष) आदि सूचनाएँ मिलती हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक ' प्रणाली के विषय में स्पष्ट किया गया है कि इसका विकास किस प्रकार से किया जा सकता है और उसका क्या उपयोग होगा? इसके लिए आधुनिक युग की अत्यधिक सशक्त प्रोग्रामिंग भाषा 'सी शार्प' (C#) का प्रयोग किया गया है जिसमें यूनिकोड के देवनागरी में काम करने की सुविधा है, इसके अतिरिक्त डाटाबेस निर्माण हेतु माइक्रोसॉफ्ट के 'एम.एस.एक्सेस' का प्रयोग किया गया है क्योंकि इसमें कार्य करना अत्यंत सरल एवं संगणक से जुड़े विद्यार्थी भी इसमें काम कर सकते है। इसका विकास निम्न रूप से किया गया है-

क्रियारूप विश्लेषक के लिए डाटाबेस का निर्माण

किसी भी सॉफ्टवेयर एप्लीकेशन के विकास और कार्यप्रणाली में डेटाबेस की अहम भूमिका होती हैं। यह एप्लीकेशन के लिए एक Backend के रूप में कार्य करता है अर्थात प्रयोक्ता को डेटाबेस के कार्यप्रणाली के बारे में न तो कोई जानकारी होती है और न ही कोई जानकारी मिलती है लेकिन किसी भी विषय से संबंधित सूचना प्रयोक्ता को डेटाबेस से ही प्राप्त होती हैं।

प्रस्तुत 'मराठी क्रिया रूप विश्लेषक' प्रणाली में डेटाबेस की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस प्रणाली के लिए डेटाबेस की डिजाईनिंग MS-Accese2007 में की गई है जो निम्न प्रकार से है -

Table1

ID	RootWord	roottype1	suffix	sftype	tense	Gender	Person	Numbur
1	वाच_1	1	तो	a	साधा वर्तमान काल	पुल्लिंग	प्रथम, तृतीय पुरुष	एकवचन, बहुवचन
2	काढ_1	1	ते	a	साधा वर्तमान काल	स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग	प्रथम, तृतीय पुरुष	एकवचन, बहुवचन
3	बस_1	1	तोस	a	साधा वर्तमान काल	पुल्लिंग	द्वितीय	एकवचन
4	चल_1	1	तेस	a	साधा वर्तमान काल	स्त्रीलिंग	द्वितीय	एकवचन
5	उठ_1	1	ता	a	साधा वर्तमान काल	पुल्लिंग, स्त्रीलिंग	द्वितीय	बहुवचन
6	मार_1	1	तात	a	साधा वर्तमान काल	स्त्रीलिंग,नपुंसकलिंग	अन्य पुरुष	बहुवचन

- **प्रोग्राम का विकास**

प्रस्तुत 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक' प्रणाली का विकास करने के लिए आधुनिक युग की अत्यधिक सशक्त प्रोग्रामिंग भाषा 'सी शार्प' (C#) का प्रयोग किया गया है जिसमें यूनिकोड के देवनागरी में काम करने की सुविधा है। साथ ही डाटाबेस बनाया गया

है जिसे कोड के माध्यम से कनेक्ट किया गया है । इस प्रणाली के विकास के लिए पाँच टेक्स्ट बॉक्स (Text Box), एक लिस्ट बॉक्स (List Box) तथा तीन कमांड बटन का प्रयोग किया गया हैं। पाँच लेबल कंट्रोल का प्रयोग कर टेक्स्ट बॉक्स के लिए क्रमशः इनपुट क्रिया (Txtbox1), विशेषता1(Textbox2), विशेषता2(Textbox3), विशेषता3(Textbox4), विशेषता4 (Textbox5) नाम दिए गए हैं। तीन कमांड बटन लिए गए जिसमें उनके टेक्स्ट प्रॉपर्टि को बदल कर क्रमशः 'रूप देखें', 'खाली' करे तथा 'समाप्त करे' नाम गए हैं। एक लिस्ट बॉक्स का प्रयोग किया गया है जिसमें यदि 'टेक्स्ट बॉक्स 1' में 'धातु'(क्रिया का मूल रूप) इनपुट देंगे तो इनपुट किए गए शब्द के रूप दिखेंगे। सभी टेक्स्ट बॉक्स, तीन कमांड बटन को संक्षेप में निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया गया हैं –

टेक्स्ट बॉक्स 1 – प्रणाली को इनपुट देने के लिए इसका प्रयोग किया गया है।

टेक्स्ट बॉक्स 2- लिस्ट बॉक्स के क्रियारूप पर क्लिक करने पर इसमें काल के विषय में सूचना प्राप्त होगी।

टेक्स्ट बॉक्स 3- लिस्ट बॉक्स के क्रियारूप पर क्लिक करने पर इसमें पुरुष के संदर्भ में सूचना को दिखाएगा।।

टेक्स्ट बॉक्स 4- लिस्ट बॉक्स के क्रियारूप पर क्लिक करने पर इसमें पुरुष के संदर्भ में सूचना मिलेगी।

टेक्स्ट बॉक्स 5- इसमें लिस्ट बॉक्स के क्रियारूप पर क्लिक करने पर पुरुष के संदर्भ में सूचना प्राप्त होगी।

कमांड बटन 1(रूप देखें) – इसका नाम 'रूप देखें' रखा गया हैं जिसमें क्लिक करने पर इनपुट किए गए क्रिया के मूल रूप के क्रियारूपों को लिस्ट बॉक्स में प्रदर्शित करेगा।

कमांड बटन 2(खाली करें) – इसका नाम 'खाली करें' रखा गया हैं जिसमें क्लिक करने पर सभी टेक्स्ट बॉक्स को खाली कर देगा।

कमांड बटन 3(समाप्त करें) – इसका नाम समाप्त करें रखा गया हैं जिसमें क्लिक करने पर प्रोग्राम से बाहर आ जाएँगे।

लिस्ट बॉक्स – लिस्ट बॉक्स का नाम l1 रखा गया है जिसमें सभी क्रियारूपों को दिखाया जाएगा जिसमें से किसी पर भी क्लिक करने पर टेक्स्ट बॉक्स 2, टेक्स्ट बॉक्स 3, टेक्स्ट बॉक्स 4, टेक्स्ट बॉक्स 5 में क्रमशःकाल, लिंग, पुरुष, वचन आदि को बताया जाएगा।

प्रस्तुत प्रणाली के डिजाइन के लिए visual studio 2010 का प्रयोग किया गया है तथा कोडिंग के लिए सी शार्प प्रोग्रामिंग भाषा का उपयोग किया गया है।

DESINING FORM

इस प्रणाली को विकसित करने के लिए प्रणाली का निम्न प्रकार से प्रारूप बनाया गया है-

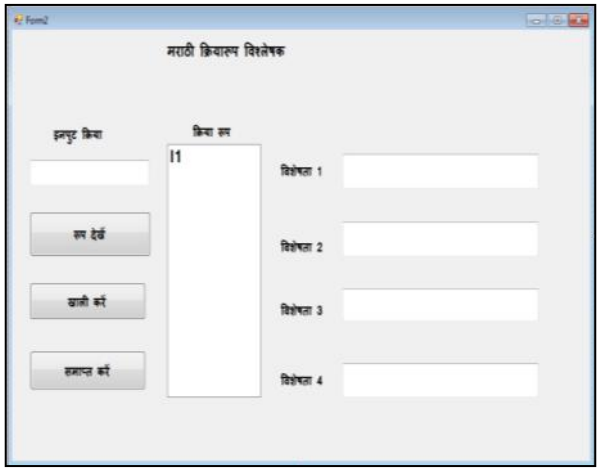

इस 'मराठी क्रियारूप विश्लेषक ' प्रणाली द्वारा इनपुट के रूप में 'टेक्स्ट बॉक्स 1' (इनपुट क्रिया) में क्रिया के मूल रूप को दिया जाएगा। इसके पश्चात 'रूप देखें' बटन पर क्लिक करने पर लिस्ट बॉक्स में इनपुट दिए गए 'मूल रूप' के सभी रूपों को दिखाएगा। जैसे निम्न प्रकार से प्रारूप में देख सकते है –

RUNNING FORM

'रूप देखें' बटन पर क्लिक करने पर लिस्ट बॉक्स में इनपुट दिए गए 'मूल रूप' के सभी रूपों को दिखाएगा इसमें से प्रदर्शित जिस किसी भी रूप पर क्लिक करेंगे तो उस रूप से संबंधित विशेषताएँ - काल, लिंग, पुरुष, वचन आदि को 'टेक्स्ट बॉक्स 2'(विशेषता 1), 'टेक्स्ट बॉक्स 3'(विशेषता 2), 'टेक्स्ट बॉक्स 4'(विशेषता 3), 'टेक्स्ट बॉक्स 5' (विशेषता 4) बताएगा जो निम्न प्रारूप में देखने पर स्पष्ट होता है-

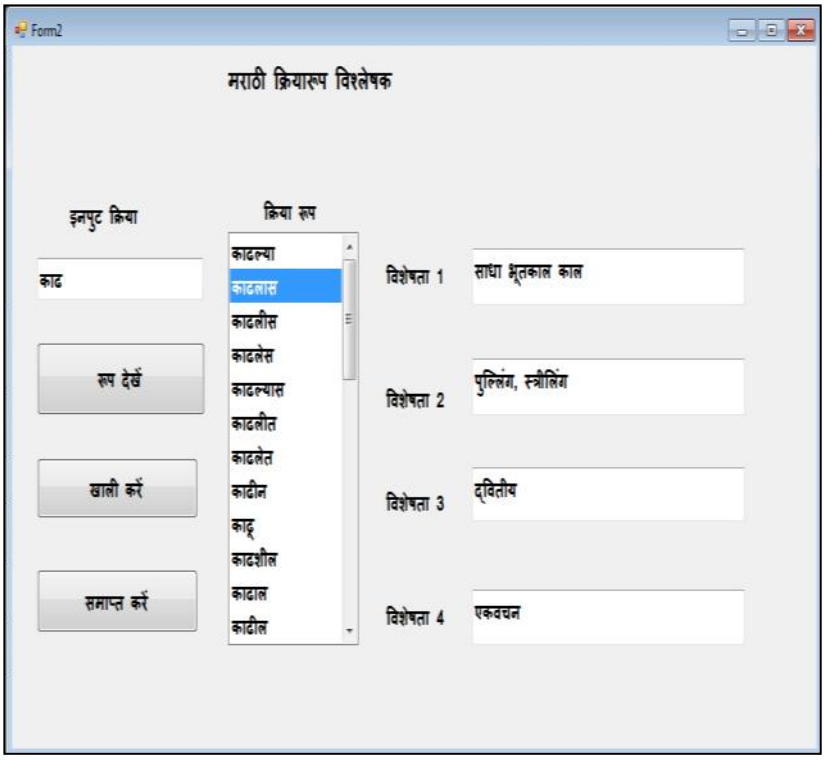

उपसंहार

निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि मानव भाषाओं की व्यवस्था को मशीन में स्थापित करना अत्यंत जटिल कार्य है, क्योंकि मशीन द्वारा (संगणक) जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे मशीनी भाषा कहते हैं। इस भाषा में सभी प्रकार की सूचनाओं को '0' और '1' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसको समझना साधारण मनुष्यों के लिए असाध्य है और मशीनों द्वारा मानव भाषाओँ को सीधे-सीधे समझ पाना संभव नहीं है। इस समस्या के कारण मानव मशीन के बीच आदेशों एवं कार्यों के आदान-प्रदान के लिए पिछले तीन-चार दशकों में कुछ विशेष प्रकार की भाषाओं का विकास किया गया है जिन्हें सामान्यतः 'उच्चस्तरीय भाषाएं' (High Level Languages) या 'प्रोग्रामिंग भाषाएं' (Programming Languages) कहा जाता है। ये भाषाएं प्रयोगकर्ता को कुछ विशिष्ट संरचनाओं के माध्यम से आदेश देने की सुविधा प्रदान करती हैं। इनके माध्यम से मानव भाषाओं के ज्ञान को समुचित मात्रा में एवं सुव्यवस्थित रूप से स्थापित करते हुए मशीनों या संगणकों को मानव भाषाओं को समझने में सक्षम बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

- मल्होत्रा, विजय कुमार (1998). कंप्यूटर के भाषिक अनुप्रयोग : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- फडके, अरुण (2010) मराठी लेखन-कोश : अंकुर प्रकाशन, ठाणे.
- वाळंबे, कै. मो. रा. (2011) सुगम मराठी व्याकरण लेखन : नितिन प्रकाशन, पुणे.
- सुरेखा, प्रकाश हुलसूरकर (2007) मराठी व्याकरण लेखन परिचय : (इंडिया) पब्लिशर्स, नवी दिल्ली.
- बासुतकर, म.मा. (1986) हिंदी मराठी क्रिया पदबंध (व्यतिरेकी विश्लेषण) : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा.
- प्रसाद, धनजी (2012) सी.शार्प प्रोग्रामिंग एवं हिंदी के भाषिक टूल्स : प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली.
- सिंह, सुरजभान (2000) हिंदी का वाक्यात्मक व्याकरण : साहित्य सहकार, दिल्ली .

TRANSLATION AS A BRIDGE IN THE 21ST CENTURY

Yugeshwar Sah
Translator
Ministry of Commerce
Udyog Bhawan, New Delhi
Contact No. 09560990944
Email:-
yugeshwar.sah@gmail.com

Abstract

21st century era is an era of translation. "Every act of communication is an act of translation" (If This Be Treason by Gregory Rabassa). Translation is a bridge across various communities, countries and continents and it creates such a condition where cultural and commercial, social and political dialogue can be established and promoted to resolve the age-old conflicts, contradictions and differences. It breaks the culture of silence and builds the culture of dialogue which is essential to cultural development, political progress and bilateral relations in this age of globalization. Translation bridges social, economic, cultural and linguistic gaps which separate us from one another.

Language, Literature and culture can play very significant role in promoting international dialogue. Cultural and linguistic awareness can well be disseminated through the translation of literary texts. The study of translated literary texts roots out cultural and linguistic prejudices and biases and helps us to understand one another better. Cultural and linguistic differences hamper the prospects of bi-lateral dialogue and economic relations. Translation enables us to go beyond these barriers and expand, establish and strengthen international dialogue and bi-lateral relations for the development of all nations and for the welfare of whole humanity. If world literature will be translated into Indian languages and vice-versa then we can understand the culture and society properly and in this way we can come closer to one another to enhance and enrich cultural and political dialogue and to promote bi-lateral relations.

This paper attempts to explore the prospects and significance of translation to strengthen and promote cultural development and bi-lateral relations. It emphasizes on how translation helps us to change our prejudiced and biased mindset and see the other nations with friendly perspective. It also reflects on why we need translation and role and relevance of translation in the 21st century. The paper discusses how translation functions and will function as a bridge to promote in-depth dialogue and development and how lack of translation creates misunderstanding and misconception among masses which may hamper socio-cultural relations and global dialogue. The paper also tries to examine how translation of world literature into Indian languages and vice-versa can expand our academic engagement and interactive prospects at the level of higher education to encourage mutual understanding pertaining to language, literature, culture and society. The effort has been made to explore the problems and prospects of establishing department of Translation Studies separately in Indian universities and to launch UG, PG M.Phil. and Ph.D. courses as we have these courses in foreign languages department to strengthen the project of nation building. So we would have translated world literature from all corners across globe in our syllabus at institutional level. Commercial investment and trade agreement cannot be very well successful and durable without cultural transaction and cultural dialogue and they are only possible through the translation of world literature into Indian languages and vice-versa and its promotion in higher education. The paper seeks to explore how translation opens new doors of

employment opportunity for young promising students, scholars and academicians in an era of globalization.

Keywords: Translation, bridge, dialogue and development, cultural understanding, world literature, knowledge, globalization.

Role and Relevance of Translation

The term translation has been derived from the Latin word "translatum" which is made up of two segments – 'Trans' i.e. 'beyond', 'through', 'across' and "latum" means 'to carry'. Thus the term translation refers to taking/carrying something beyond or across. According to Nida "translating, consists in producing in the message of the source language, first in meaning and second in style". Translation is such a medium through which we can travel the whole world sitting in our home "*Yatra Vishwam Bhawati, Ek neeram*" (qtd in Agarwal, 1999, p. 15) and it makes us realize *"Vasudhaiv Kutumbakam"* (the whole world is my family). Translation plays a key role in national unity and cultural integration and it is true in the case of India.

Nothing moves without translation (E.S. Bates) in the 21st century. What belongs to nobody, belongs to everybody. No man's area becomes everyman's area. 21st century era is an era of translation because it is an era of knowledge. Translation pervades the whole human history and the entire world. Gregory rightly says "Every act of communication is an act of translation". Every word we utter is a translation of ideas, images and experiences. Where there is word there is translation. Words determine, illustrate and illumine our world. Bhartrihari rightly said "Jagat sarvam shabden bhashte" (We get the cognizance of the world through words) (quoted in Singh: 2014). There is no world without words and without word we can't share and disseminate the inexhaustible source of knowledge. Translation is to know the best that has been said and thought in the world. The knowledge text is written almost in 7000 thousand language of the world. There are more than two hundred members in UNO but there are only six official languages i.e. English, French, Spanish, Russian, Chinese and Arbi. So without translation we cannot disseminate and democratize the information to all in all languages. "No language, no nation is sufficient onto itself. Its mind must be enlarged by the thoughts of other nations or else it will warp and shrivel. In English in other language, many of the greatest ideas we have been brought in through translation. The central book of the English speaking peoples is a translation – although it comes to us as a shock to many to realize that the Bible was written in Hebrew and in Greek, and translated by a committee of scholars". (Highet, 1994: 106). So it can be said that "Jagatsarvam anuvaden bhashte" (we get the cognigence of the world through translation) (quoted in Singh 2014) in the 21st century. No human activity is possible without translation. Whenever and wherever we use/utter a word there is translation. We translate abstract ideas into language through words. Words construct/make language, language creates knowledge and this knowledge is acquired, preserved, created, disseminated and applied in the world through translation. Translation makes this 'knowledge century' conceivable intelligible, perceivable and perceptible.

Translation as a Bridge

"Ati apar je saritbar, jo nrip setu karahin,

Chadhi pipeelakau param sukh bin kshram parahi jahin."

(quoted in Verma)

(If the king builds the bridge across the river then even an ant crosses the vast river without any difficulty.)

Tulsidas's couplet from the Ramcharitramanas highlights the role of translator and the relevance of translation in contemporary times. Translation is a bridge between two languages, two nations and two cultures of the world. Without translation man will be a stranger or an alien in his own community, country and continent. "India is perhaps the one country, where the citizens visiting a neighbouring state become foreigners in their own land. On the other hand, Indian currency is the only currency in the world to be inscribed with multiple languages" (Ravi 2012:12).

Translation functions as a bridge across different linguistic groups, across numerous cultures, communities, countries and continents, across various caste, colours, and creeds. According to Prof. Avadesh Kumar Singh, "It offers itself as a bridge across different cultures and their knowledge systems and their five basic aspects: acquisition of knowledge, preservation of knowledge, creation of knowledge, dissemination of knowledge and application of knowledge". (Singh 2014: 06).

Tagore's poem also emphasizes on the function of translation as a bridge.

"Thou hast made me known to friends when I know not, Thou hast given me seats in homes not my own, Thou hast brought the distant near and made a brother of stranger…"

Translation makes me familiar and friendly with the stranger and brings the distant very close to us, makes this world a global village in this 21st century and we can easily realize the philosophy of Vasudhaiv Kutumbakam (the whole world is my family). In the country like India where there is so much differences, divides and diversities such as lingual, cultural, religious. We are / will be strangers and alien in our own community and country without translation India is a diverse land where human happiness, hope and harmony rests on translation. The question arises that what will integrate unite and bridge all the gaps, gulfs and groups and let us breathes the fresh air in an era of knowledge? It is only translation which has capacity to create the culture of clarity, comprehension, unity, amity, friendliness, togetherness and deconstruct the culture of chaos, confusion, clash, conflict, collision, chasm, age-old prejudices and biases, doubts, disbeliefs, discrimination and differentiations. Translation serves as a bridge where dialogue and development, peace and prosperity, education and employment can go hand in hand.

We need translation in the 21st century because it is needed for the democratization of knowledge, making our society "a knowledge society and to uplift the society. Translation is needed to know our nation deeper and better. to establish peace and non-violence, to make developing nation, a developed nation and to build the culture of dialogue amongst us. It is also needed to expand the horizons of our knowledge, to make man a superman, to make country, a continent, to convert illiterate and uneducated society into a knowledge society, to make poor nation, a prosperous nation, to transform "mere thinkers" into "man thinking" (Emerson), to awaken sleeping masses, to enlighten the ignorant masses. It is also needed at the international forum to strengthen bi-lateral relations and economic ties, to enhance socio-economic development, to root out racial, cultural, religious and linguistic prejudices and biases, to resolve age-old conflicts and contradictions, to bridge the linguistic gap that divides our society and nation. Translation is a must for nation building, global brotherhood, universal hope and harmony. And the

translation of the Bible, the Gita, the Quran has brought peace, prosperity, hope, happiness and harmony in the whole world.

Translation is one of the effective media to extract the best from all cultures and to impart it at school, college and university level. Bhabha asserts that “Translation is the performative nature of cultural communication” (Bhabha, 1994:228). Translation is perceived as a cultural activity and has become a respectable profession. “One does not translate language but cultures” and "in translation we transfer cultures not languages” (House, 2002:92). Jhumpa Lahri also emphasizes that “translation is not only a finite linguistic act but an ongoing cultural one.” (Lahri 120). Now like English language, translation is the need of the time. It has become our social, cultural, commercial, professional and above all it is our global need. Like Internet it connects us with the knowledge of the whole world.

Without translation we will have limited and narrow knowledge and information because language puts limit and becomes a barrier in gaining knowledge from diverse domains of language, cultural and literature. No one can learn all the languages of the world, therefore it is said that “The limits of language are the limits of knowledge” (Wittgenstein). But we have challenged these limits and barriers which have been put upon us since ages with the help of powerful weapon called translation.

Teaching of Translated Texts

Every act of teaching is an act of translation and translation is central to teaching because teaching is "an act of interpretation", explanation. Teaching of translated text can create a powerful bridge across different and diverse social, lingual, political and cultural groups and all can thrive together and can commence a new era.

But teaching translated texts is considered to be peripheral or initiative kind of teaching. We study and teach translated texts as original of foreign authors but hesitate to teach translated text of Indian works.

We have received/are receiving the knowledge of world’s greatest literature through translation. The translation of the Bible, the Gita, the Mahabharata, the Ramayana, the Vedas, the Upnishadas, the Gita, Panchtantra etc. has revolutionized the whole world and history is a witness that translation of the Bible has played a crucial role in spreading Christianity. We have been reading the greatest writers of the world in translation such as Socrates, Aristotle, Plato, Kalidas, Tagore, Tulsi, Tolstoy Dante, Petnarch, Virgil, Horace, Cicero etc.... and it is a long list. "Classical influence flows into the literature of modern nations by three ways- translation, imitation, and emulation." (Highet, 1949: 104). Had Indian sacred texts such as the Vedas, the Upanishads, the Gita been not translated then India would not have emerged as a spiritual leader across the globe. The Gita has been translated in many languages and many times in the same language after the Bible.

"In view of it, if we focus on Indian situation, we find that English classroom is a site of teaching through translation. In reality too we have been teaching much of translated texts but we have never noticed them. The literary criticism paper, for instance, is basically constituted of no-English texts. Plato, Aristotle did not write in English but in Greek. The works of Horace, Cicero and Quintilian are in Latin, which were later translated into English. Later on A.W. Schlegal, AC Schlegal and Schiller wrote in German, not ion English. Ferdinand de Saussure, Claude Levi-Strauss, Roland Barthes, Jacques Derrida, Michel Fou-

cault, Jean Francois Lyotart and Pierre Bouriard did not write in English but they are being prescribed and taught in English class-rooms. But nobody questions the issues of their originality nor equips ourselves with new strategies to teach them as translated texts. Why are all these questions raised in case of teaching translated texts in Indian class room? The reason is in the mind-set because these texts happen to be translations of Indian works" (quoted in Singh: 29).

In order to maintain the integrity and unity of Indian the need of the our is to pose the studying / teaching translated texts at school, college and university level and also there is a need to establish the department of Translation Studies with the cases such as B.A., M.A., M.Phil. and Ph.D. in translation studies. This will also enable and expand academic engagement and interactive prospects at the level of higher education to encourage mutual understanding pertaining to language, literature, culture and society. Translation Studies has immense potential in our multilingual society. Translation Studied has emerged as a major discourse in the diverse country like India.

Translation and Employment

There is immense potential and prospect of translation in India as it has been an age-old practical ground of all forms of translation. There is huge job / employment opportunity in India. English is the second official language along with Hindi in India. So the translations are needed to all the central government and state government offices. Apart from it, the employment opportunity is in the court, railway, university and many other government institutions and organizations. There is also job opportunity in the field of interpretation. Interpretations are needed in tourism, in Lok Sabha, Rajya Sabha, meeting with foreign delegates, UNO etc.

Translation creates employment opportunity in the private sectors such multinational companies, publication house, media, mass communication, translation of literary texts, non-literary texts, facebook, dubbing, subtitling, google etc. There is very urgent need of translation of knowledge texts in all the major regional languages of India and NTM (National Translation Mission) is engaged in this pursuit of democratization and dissemination of knowledge.

Without cultural, linguistic and knowledge transaction, commercial investment and trade ties will not be durable because all relations, treaties and ties are based on understanding and translation would help us to understand one another profoundly.

Translation of world literature only will not help us to achieve our desired goal, therefore, we have to also pay attention to the translation of knowledge texts i.e. philosophy, sociology, science, psychology, education etc. which will instill into us with valuable knowledge and enable us to comprehend the social processes and philosophical thoughts cropping up in the societies. We also need to focus on the translation of music and cinema which will have enduring impact on the minds of the people of both the nations. The poorest of the poor and the commonest of the common people have access to music and cinema. Even the illiterate and uneducated those who cannot read or write, but listen, watch and understand message inherent in the music and cinema. Films and movies are the reflection of society's culture and social problems and prospects. So, they would help us to comprehend social perspectives and correct social and cultural problems. There is a great scope of translation in this field which will lead to socio-economic development and boost bi-lateral relations.

There are three activities from which nations can be developed "War to expand their territory, commerce to accumulate wealth and expand their economic activities and translation to expand their cultural, artistic and economic productions." (Nyongwa, 2012:34)

Conclusion

The progress of the nation and refinement of culture are centered on the axis of translation. No country can progress or develop in isolation and therefore the unity of the nations is needed for cultural, intellectual, moral and spiritual enrichment and also for socio-economic development and it is possible through translation. Translation is the barometer of nation's advancement in the field of education and employment, culture and literature, cinema and mass media, bi-lateral dialogue and diplomacy etc…. Translation is an effective medium of promoting dialogue and diplomacy, education and employment, bi-lateral relations, socio-economic ties and treaties etc… It is emerging as a global means of communication in an era of globalization. Translation is a powerful weapon through which we can unite all the nations under one banner and establish peace and harmony across globe and ensure bi-lateral dialogue and development in the field of education, tourism etc ….. among all nations.

Translation encompasses various aspects related to language, culture, literature, philosophy etc….. of the society which need to be studied, imparted, incorporated into academic curriculum at institutional level for the expansion and promotion of intense interactive possibilities that will result in strengthening global dialogue, bi-lateral relations, and economic ties. Translators are like Nal and Neel who will build the durable bridge across globe which will lead to nation building through the process of expanding and promoting translation in the 21st century.

References

- Agarwal, Dr. Kusum. 1999. Anuvad Shilpa: Samkaleen Sandarbha. New Delhi: Sahitya Sahkar.
- Bhabha, Homi. 1994. The location of Culture. London: Routledge.
- Deshpandey, Sashi. 2013. Dimension of Translation: A Keynote Address in Translation and Post Colonial ties Transactions Across Languages and Cultures edited by Vijaya Guttal and Suchitra Mathur. New Delhi: Orient Black Swan Private Limited.
- Gosh, Amitabh. 1994. The Indian Express, March 20, 1994.
- Height, G. 1949. The Classical Tradition: Greek and Roman Influences on Western Literature. Oxford University Press. P.104, 106.

- House, J. 2002. Universality Versus Culture, Specificity in Translation A. Ricardi (ed.) Translation Studies: Perspectives on an Emerging Discipline (92-110), Cambridge: Cambridge University Press.
- Kumar, Ravi (ed.). 2012. Role of Translation in Nation Building. New Delhi: Modlingua.
- Lahri Jhumpa. 2000. “My intimate alien.” Outlook. New Delhi. Special Annual Issue on “Stree [Woman] pp. 116-120.
- Singh, Avadesh Kumar. 2014. "Translation Studies in the 21st Century". Published in Translation Today Volume 8, No. 1, 2014, pp. 05-44 (CII, NTM Mysore).
- Nida, E.A. 1964. Towards a Science of Translating. Leiden: E.J. Brill.
- Nyonga, Dr. Moses. 2012. “Translation and Nation Building: What a Difficult Couple!” Role of Translation in Nation Building (ed) Kumar, Ravi. New Delhi: Modlingua, p.34.
- Verma, Vimlesh Kanti and Malti (eds) Anuvad aur Tatkal Bhashantaran, New Deli. Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India

सिनेमा में दलित प्रश्न और 'फेंड्री'

सूअर को कहानी में इस दलित समाज के प्रतीक के रूप में रखा गया है। निर्देशक अपनी दृष्टि दर्शकों को बखूबी ढंग से समझा पाए हैं कि किस प्रकार एक दबित-कुचलित वर्ग उग्र होता है। फ़िल्म मे यह साफ झलकता है कि कोई भी चाहकर उग्र नहीं होता। उसके उग्र होने के पीछे शोषण की एक लंबी प्रक्रिया होती है, जो उसे विद्रोह करने पर मजबूर कर देती है। नागराज मंजुले इस फ़िल्म को समाज के आइने के रूप में पेश करते हैं।

सिनेमा एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है। यह सबसे अधिक संप्रेषणीय विधा है। साहित्य की ही तरह सिनेमा भी अपनी मूलभूत संवेदना सामाजिक सरोकारों से ही प्राप्त करता है। इसकी पहुंच समाज के हर तबके तक है। समाज के हर तबके तक अपनी पैठ के कारण सिनेमा का एक बड़ा बाज़ार बन चुका है और आज वही दिखाया जा रहा है, जो एक बड़ा वर्ग देखना पसंद करता है। वह बड़ा तबका मात्र मनोरंजक फ़िल्में देखना पसंद करता है। आज का समाज सिनेमा से बहुत अधिक संचालित है। पूरा मध्य वर्ग व निम्न-मध्य वर्ग का समाज अपने खाने, पहनने, चलने, बोलने आदि सब कुछ सिनेमा द्वारा संचालित होता जा रहा है। "भारत दुनिया का सबसे अधिक फ़िल्म बनाने वाला देश है। आज भारत में हर साल लगभग पच्चीस भाषाओं पर फ़िल्में बनती हैं।"(पत्रिका नया पथ: हिंदुस्थानी सिनेमा के सौ बरस पर केंद्रित, जनवरी-जून 2013, पृ.3) जबकि सिनेमा दरअसल दो भागों में बंटा है- कमर्शियल सिनेमा और समांतर सिनेमा। कमर्शियल सिनेमा में मात्र मनोरंजक फ़िल्में ही देखने को मिलती हैं। लेकिन जब बात समांतर सिनेमा की हो तो कई समस्यापरक फ़िल्में देखने को मिलती हैं। जैसे- 'डोर', '15 पार्क एवेन्यू', 'अंतर्द्वंद्व', 'मंडी', 'बाज़ार', 'सद्गति', 'अछूत कन्या' आदि। जब हम भारत में समस्यापरक सिनेमा में दलित केंद्रित फ़िल्में ढूंढने निकलते हैं तो बहुत ही कम फ़िल्में देखने को मिलती हैं। जबकि प्रादेशिक सिनेमा, उसमें भी मराठी सिनेमा इस विषय में हिंदी सिनेमा से अधिक समृद्ध देखने को मिला, जिसमें जोगवा, फेंडरी आदि जैसी श्रेष्ठ फ़िल्में देखने को मिली। यह शोध आलेख मराठी फ़िल्म 'फेंड्री' पर केंद्रित है।

'फेंड्री' का सामान्य अर्थ है- सूअर। वह सूअर जो इस देश व समाज के सभी जीव-जंतुओं में सबसे निकृष्ट दृष्टि से देखा जाता है। इस फ़िल्म को निर्देशित किया है नागराज मंजुले ने। 'फेंड्री' की कहानी दलित परिवार में रहने वाले एक किशोर की है। उसका नाम जब्या (जांबवन्त कचरू माने) है। कचरु माने उसके पिता का नाम है। कहानी महाराष्ट्र के अकोलनेर नाम के गांव की पृष्ठभूमि और इस गांव के इस इकलौते माने परिवार व मुख्यतः जब्या के इर्द-गिर्द घूमती है। जब्या का परिवार अपने जीवनयापन, मात्र दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए बहुत संघर्ष करता है। उन्हें पूरे परिवार के साथ मेहनत मजदूरी करनी पड़ती है। जब्या को भी स्कूल छूटने के बाद अक्सर काम पर जाना पड़ता है और कभी-कभी तो इस कारण से स्कूल से छुट्टी भी लेनी पड़ती है। भारत के किसी भी आम गांव की तरह अकोलनेर की स्थिति है। इस गांव में भी ऊंची जाति का दबदबा है। उच्च वर्ण आर्थिक रूप से सम्पन्न भी है इसलिए दलित व अन्य वर्ग पर उसका दबाव बना रहता है।

जब्या सातवीं कक्षा का छात्र है। वह अपनी ही कक्षा में पढ़ने वाली शालू नाम की सवर्ण लड़की से मन ही मन प्यार करता है। पर चूंकि वह एक गरीब दलित परिवार से है और गांव की सामाजिक दशा उसे यह हिम्मत नहीं देती कि वह अपने दिल की बात शालू तक पहुंचा सके। उसके

मेघा
Assistant Professor
Jain University

दिल का हाल जानने वाला पूरे गांव में केवल एक लड़का है पिरया (पिराजी)। पिरया ही उसका हमराज़ व हमदर्द है। पिरया को छोड़ कर पूरे गांव के लोगों व अपने सहपाठियों द्वारा हमेशा जब्या का उपहास ही देखने को मिलता है। पिरया के अलावा एक अधेड़ उम्र का चंक्या (चंकेश्वर साठे) भी उसका एक साथी है। चंक्या पूना के आस-पास के किसी गांव से आया व्यक्ति है। वह जब्या के हमदर्द के रूप मे जगह-जगह जब्या को हिम्मत बांधता दिखता है। चंक्या का किरदार अदा करने वाला अदाकार और कोई नहीं फ़िल्म के निर्देशक नागराज मंजुले हैं। चंक्या का किरदार जब्या के दिल में एक सकारात्मकता को बनाए रखने के कारण एक बहुत ही खास किरदार के रूप सामने आता है। चंक्या जब्या के गांव में 'साइकल मार्ट और कैरम हाउस' नाम से एक दुकान चलाता है। वह साइकिलों की मरम्मत करता है व साइकिल को किराए पर देता है, तथा साथ ही कैरम भी खेलने खिलाने का व्यापार करता है। जब्या का यहां नियमित रूप से आना जाना है। वह बैठे-बैठे लोगों को खेलते देखता है। लेकिन उसका यहां रोज़ाना आने का कारण यह है कि जिस जगह यह दुकान है, उसके ठीक सामने शालू का घर है। स्कूल जाने से पहले ही जब्या रोज़ उसकी दुकान में बैठकर चोरी-चोरी नज़रों से शालू को ताकता रहता है और शालू के पीछे-पीछे वहां से स्कूल निकल जाता है।

जब्या अपने मजदूरी तथा अपने परिवार की स्थिति को अपने सहपाठियों से और विशेषतः शालू से लगातार छिपाने की कोशिश करता दिखता है। अक्सर जब स्कूल से छुट्टी लेकर काम करने जाता है तो काम से लौटते समय वह छिपता-छिपाता घर जाता है क्योंकि स्कूल से छुट्टी का और काम से लौटने का समय लगभग एक ही होता है। खासतौर से शालू को वह यह कभी पता नहीं चलने देना चाहता कि वह कितना गरीब व दरिद्र स्थिति में है। उसके पास पहनने के लिए ढंग के कपड़े भी नहीं है। वह अपने परिवार की हर स्थिति से अवगत है, लेकिन अपनी उम्र के हर किशोर की भांति उसके अपने कुछ शौक व सपने हैं। वह भी चाहता है कि उसके पास अच्छे कपड़े हों, जिनसे वह शालू को अपनी ओर आकर्षित कर सके। वह चाहता है कि शालू भी उसे वैसे ही प्यार करे जैसे वो उससे प्यार करता है। उसे लगता है कि यदि वह अपनी आर्थिक स्थिति ठीक कर लेगा तो शायद शालू उसके पास आ जाएगी। इसके लिए वह पड़ोस के गावों में आइसक्रीम व कोला बेचने का भी काम करता है। इनसे कमाए हुए पैसों से वो अपने लिए जींस पैंट और टीशर्ट खरीदने की योजना बनाता है, लेकिन दुर्भाग्यवश इस योजना में पानी फिर जाता है और वह बहुत हतोत्साहित हो जाता है।

ऐसे में चंक्या उसका उत्साहवर्धन करता है। पिरया हर दुख-सुख में उसके साथ दिखाई देता है, फिर वो कक्षा में हो, शालू के इंतज़ार में चंक्या की दुकान पर जाकर बैठना हो, काली चिड़िया के शिकार में जंगल-जंगल भटकना हो, मेले में जाना हो, आइसक्रीम व कोला बेचने के लिए गांवों की गली-गली में धूप में फिरना हो आदि। चंक्या आमतौर पर समाज में पाए जाने वाले ऐसे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता दिखता है, जो अपने जीवन में बेकार है लेकिन अपने अनुभवों को लोगों से साझा करने में चूकता नहीं है। लोग उसे गपोड़ी समझते हैं, जो शायद सच ही होता है। यह जब्या को चाहता है। उसे समझता भी है, समझाता भी है। यह पियक्कड़ शराबी जब्या जैसे बच्चे के माता-पिता की आंखों में खटकता भी है। जब्या का पिता कचरू जो स्वयं समाज में उपेक्षित है, जब्या को चंक्या से दूर रहने की हिदायत देता दिखता है। उसे डर है कि कहीं उसकी संगति में जब्या बिगड़ न जाए। जबकि जब्या का चंक्या पर बहुत विश्वास है। इस किरदार का शेड सकारात्मक है या नकारात्मक यह तो समझ नहीं आता, लेकिन इस तरह की मिलती-जुलती शख्सियत आमतौर पर बाज़ारों व दुकानों पर देखी जा सकती है।

फ़िल्म की शुरुआत से ही जब्या को एक काली चिड़िया के पीछे भागते हुए दिखाया गया है। पूरी फ़िल्म में समय-समय पर वह काली चिड़िया दिखाई देती है और अंत तक उसके हाथ नहीं आती। वह और पिरया लगातार उसे पकड़ने के असफल प्रयास में लगे रहते हैं। जिस काली चिड़िया के पीछे वह भागते रहते हैं वह काली चिड़िया कोई और नहीं जब्या की महत्वाकांक्षा का प्रतीक है, जो शालू से जुड़ी है और जिसे पूरा करने के लिए जब्या न केवल गांव में अपने परिवार के साथ छिपता-छिपाता मज़दूरी करता है, बल्कि स्कूल के बाद अपने आस-पास के गांवों में आइस्क्रीम व कोला बेचने का काम भी करता है और इसके साथ अपनी

कक्षा में भी ध्यान देता है। कक्षा छूटने पर अपने सहपाठियों से पता करके अपना गृहकार्य व कक्षा में पढ़ाया जाने वाला हर कार्य रात-रात भर जागकर पूरा करता है। काली चिड़िया का एक अन्य परंतु प्रत्यक्ष पक्ष यह भी है जो जब्या के व्यक्तित्व और उसकी महत्वाकांक्षाओं में चंक्या जैसे पात्र का प्रभाव भी दिखलाता है। चंक्या ने उसे बताया है कि उस काली चिड़िया को जलाकर उसकी राख अगर किसी पर डाल दी जाए तो वो उसके वश में हो जाएगा। जब्या शालू से प्यार करता है। वह इस सामाजिक ढांचे से न केवल अवगत है बल्कि इससे सबसे अधिक प्रताड़ित भी है। उसके हर सपने और हर महत्वाकांक्षा का केंद्र शालू के ही इर्द-गिर्द घूमता रहता है। वह यह जानता है कि शालू कभी भी उसे स्वीकार नहीं करेगी, अतः वह उस काली चिड़िया की राख़ से उसे अपने वश में करने का टोटका अपनाने का भी पूरा प्रयास करता है। यह अलग बात है कि अंत तक वह काली चिड़िया उसके हाथ नहीं लग पाती।

फ़िल्म के कुछ सीन दर्शकों का दिल द्रवित करने वाले है। जब मेले में कचरू नाचते हुए जब्या को जबरन ले जाकर उस मेले का मजदूर बना देता है। एक रौशनी करने वाला, हाथ में ट्यूबलाइट लेकर चलने वाला जब्या अपने सपनों को चूर-चूर होता देखता है। इसी प्रकार हर रोज़ उसके आत्मसम्मान को चोटें पहुंचती हैं। जहां सब बड़े, बूढ़े व बच्चे नाच रहे होते हैं, जिनमें जब्या के सहपाठी जो उसे खास चिढ़ाने के लिए उसके इर्द-गिर्द नाच रहे हैं, वहां जब्या आंखों में आंसू और अपने सर पर ट्यूबलाइट लिए चल रहा है। गांव के मेले में सूअर यहां-वहां गंदगी मचाए फिरते हैं। भगवान की पालकी निकलते समय एक सूअर उस तथाकथित पवित्र स्थान से गुज़र जाता है। थोड़ी देर बाद पालकी उठाने वालों में से आगे चलने वाला व्यक्ति गिर पड़ता है, जिस कारण पालकी भी गिर जाती है। ये उच्च सभ्य वर्ग में एक अपशगुन माना जाता है। ऐसे में पाटिल कचरु को बुलाता है और एक बड़ा सूअर पकड़ कर ले जाने को बोलता है। कचरू बोलता है कि उसकी छोटी बेटी सुरेखा की दो दिन में शादी है तथा उसके पैर में कुछ दिनों से बहुत दर्द है, अतः उसके लिए यह कार्य बहुत मुश्किल है। उसके अकेले के बस का नहीं है। परंतु पाटिल नहीं मानता और उसे बोलता है कि वह अपने परिवार के सभी सदस्यों को लेकर जाय और स्कूल के पीछे बहुत सारे सूअर हैं। उनमें से एक बड़े सूअर को पकड़ कर ले जाए, मारने के लिए। यदि वह ऐसा करेगा तो पाटिल उसे गांव के फ़ंड में से उसकी ज़रूरत के हिसाब से पैसे देगा। कचरु को बेटी की शादी के दहेज के लिए पैसे की वैसे ही बहुत ज़रूरत है। अतः वह तैयार हो जाता है।

अगले ही दिन सुबह-सुबह उसकी पत्नी, दो बेटियां और एक बेटा जब्या ऐसे अपने पूरे परिवार को लेकर वह सूअर मारने के लिए चल पड़ता है। सुरेखा जिसकी शादी है, अपने हाथ में शगुन की महंदी लगाए पिता के पीछे-पीछे सूअर मारने के लिए चल पड़ती है और सारा दिन धूप में खपती है। जब्या के लिए यह बेहद शर्मनाक घड़ी होती है क्योंकि स्कूल का समय होने को है और उसके सहपाठी स्कूल आना शुरू कर देते हैं और पीछे सूअर के शिकार का तमाशा देखने खड़े हो जाते हैं। जब्या अपने पूरे परिवार के साथ सूअर पकड़ने के लिए संघर्षरत है और उसका पूरा स्कूल खूब मज़े से यह तमाशा देख रहा है। स्कूल की घंटे बजती है। बच्चे कक्षा लेने अपनी-अपनी कक्षाओं में चले जाते हैं। जब्या की जान में जान आती है, वह फिर लग जाता है परिवार के साथ सूअर मारने। स्कूल का समय खत्म हो जाता है लेकिन सूअर हाथ नहीं आता है, अब तक वे लगातार काम में लगे हैं। इतने में स्कूल की घंटी बज जाती है। और फिर तमाशा देखने वालों की भीड़ जमा हो जाती है। इस बार जब्या के लिए असहाय हो जाता है, क्योंकि इस बार भीड़ में शालू भी है। वह जाकर छुप जाता है। उसके घर वाले उसे आवाज़ देते-देते थक जाते हैं, लेकिन वह बाहर नहीं आता। थोड़ी देर में सूअर के पीछे भागते-भागते कचरु को जब्या मिल जाता है और वो गुस्से में लाल हो कर उसे पीटते हुए बाहर लाता है। जिस इज्ज़त को जब्या इतनी देर से बचाने की कोशिश में लगा हुआ था, वह पूरी तरह मिट्टी में मिल चुकी होती है। अब अपना सारा गुस्सा वह सूअर पकड़ने में लगा देता है और सफल हो जाता है। लेकिन उसका दिल बुरी तरह टूट चुका होता है क्योंकि इतने दिनों से वो जिस शालू के आगे अपनी इन परिस्थितियों को छिपाता फिर रहा था, वो भी आज इस भीड़ व अन्य सहपाठियों के साथ इस तमाशे में भरपूर मज़ा ले रही थी। जब्या चोरी-चोरी नज़रों से उसे खिलखिलाकर हंसते हुए देखता है। इस पूरे

तमाशे के दौरान उसके सहपाठी लगातार उसे फेंडरी यानि सूअर बोल-बोल कर छेड़ते जा रहे थे। जब्या चुपचाप अपने परिवार के साथ सूअर लिए घर की ओर निकल जाता है। तमाम दर्शक उसके साथ हो लेते हैं और उसे लगातार चिढ़ाते रहते हैं, उसकी बहनों पर फब्तियां कसते हैं।

इतने दिनों से मन में ज्वालामुखी दबाये जब्या के लिए यह सब असहनीय होने लगता है। लगातार खुद को रोकने के प्रयास में उसका इतने लंबे समय से दबा गुस्सा अचानक आज फूट पड़ता है और किसी के संभाले नहीं संभलता है। लगातार पत्थर उठाकर सबको मारता चला जाता है। लगातार चुपचाप शोषण का शिकार एक शोषित आज विद्रोह कर उठता है। इससे पहले तक उसके मन में शालू को लेकर हर आकांक्षा आज ध्वस्त हो चुकी थी। मन की वह उम्मीद कि शालू भी शायद मन ही मन उसे चाहती है, ध्वस्त हो चुकी थी। इसी दुख ने उसके अंदर की हर सहन शक्ति को आज समाप्त कर दिया और जब्या का साक्षात्कार एक कड़वे यथार्थ से हुआ। वह हर शोषण का विद्रोह कर उठा। यही इस फ़िल्म का अंत है जो एक विद्रोह की शुरुआत है। फ़िल्म के अंत में जब्या द्वारा मारे जाने वाला पत्थर दरअसल फ़िल्मकार की चोट है इस दोगुले समाज को। यह वह समाज है जो एक ओर तो गांधी, अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले का आदर्श हम सबके सामने रखता है और दूसरी ओर इनका व्यवहार किसी भी आदर्श के समकक्ष तो क्या आस-पास भी दिखाई नहीं देता। अतः फेंडरी इस समाज को मारा जाने वाला पत्थर है।

मुख्यतः यह कहानी जब्या व उसके संघर्ष की है। जब्या जो दरअसल एक प्रतिनिधि पात्र है उस समुदाय का जो आज आज़ादी के 65 वर्षों के बाद भी अछूत माना जाता है। इसे और ठीक करके कहें तो यह उस पात्र का प्रतिनिधित्व करता नज़र आता है, जिसे समाज के अन्य वर्गों ने अपने समान अभी तक स्वीकारा नहीं है। जो जन्म ही तथाकथित उच्च वर्णों की सेवा करने के लिए व गालियां खाने के लिए लेते हैं। फ़िल्म में यह साफ दिखाया गया है कि किस प्रकार एक 13-14 वर्ष का बच्चा हमारे समाज की जाति-व्यवस्था का शिकार होता है। किस प्रकार वह अपना बचपन खो देता है। खेलने-कूदने की उम्र में मजदूरी करता है। उससे भी यह अपेक्षा की जाती है कि वह भी अपने पिता की तरह गांव भर की चाकरी करे, पर यह जब्या को स्वीकार नहीं। वह शांति से प्रतिरोध करते हुए दिखता है, यह कहता हुआ कि यह मेरा काम नहीं है। एक ओर स्कूल में जाति-पाति के खिलाफ पढ़ाया जा रहा है। लेकिन व्यवहार में आज भी वही पुरानी घिसी-पिटी मान्यताएं देखने को मिलती हैं। फ़िल्म इस कॉन्ट्रास्ट को दिखाने में सफल दिखती है। अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले के महाराष्ट्र के गांवों में आज भी यह भेदभाव देखने को मिलता है। फ़िल्म में किशोर मनोविज्ञान को बहुत गहराई से दर्शाया गया है। किशोरावस्था में जब्या जैसे किसी भी बच्चे की प्रेरणा उसकी उम्र की एक लड़की का होना स्वाभाविक है। इसी मनोविज्ञान को समझते हुए नागराज मंजुले ने शालू को जब्या की प्रेरणा के रूप में दिखाया है। वह उसकी नज़र में अच्छा होने के लिए कुछ भी कर सकता है। वह कोई मेहनत करने से नहीं चूकता। वह सिर्फ शालू को पाना चाहता है, लेकिन उससे दिल टूटते ही उग्र प्रतिरोध कर उठता है। सूअर को कहानी में इस दलित समाज के प्रतीक के रूप में रखा गया है। निर्देशक अपनी दृष्टि दर्शकों को बखूबी ढंग से समझा पाए हैं कि किस प्रकार एक दबित-कुचलित वर्ग उग्र होता है। फ़िल्म मे यह साफ झलकता है कि कोई भी चाहकर उग्र नहीं होता। उसके उग्र होने के पीछे शोषण की एक लंबी प्रक्रिया होती है, जो उसे विद्रोह करने पर मजबूर कर देती है। नागराज मंजुले इस फ़िल्म को समाज के आइने के रूप में पेश करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार-

फ़िल्म 'फेंड्री' , निर्देशक- नागराज मंजुले, रिलीज़- 14 फरवरी 2013

संदर्भ ग्रंथ-

भारतीय हिंदी सिनेमा की विकास यात्रा, वीरेंद्र सिंह यादव, पैसिफिक बुक इंटरनेशनल, 2012, दिल्ली।

पत्रिकाएँ –

नया पथ : हिन्दुस्तानी सिनेमा के सौ बरस, जनवरी-जून : 2013(संयुक्तांक), मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, नई दिल्ली।

हंस : हिंदी सिनेमा के सौ साल, फरवरी 2013, राजेंद्र यादव, नई दिल्ली।

वसुधा : हिंदी **सिनेमा पर केन्द्रित, अंक 81, सितंबर 2009, स्वयं प्रकाश, भोपाल।**

जनपद भिण्ड (म0प्र0) का अपवाह तन्त्र : एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ0 पुष्पहास पाण्डेय
पी–एच.डी.–नेट
सहायक प्राध्यापक, (भूगोल)
अनुदानित महाविद्यालय
सम्बद्ध छ0 शा0 म0
विश्वविद्यालय–कानपुर
&
शिवम् वर्मा
नेट–जे.आर.एफ.
शोध छात्र,
(भूगोल)–जीवाजी
विश्वविद्यालय, ग्वालियर

शोध सार

प्रवाही जल को सामान्यतः पृथ्वी की प्राणशक्ति कहा जाता है। यह पौष्टिक खनिज तत्वों का पुनर्वितरण करती हैं, जो मृदा निर्माण और पौधों की वृद्धि के लिये महत्वपूर्ण और समाज हेतु विभिन्न प्रकार से सहायक हैं। सरितायें न केवल हमें जल की आपूर्ति करती हैं, बल्कि अवसादों को अपने साथ परिवहन करती हैं और उद्योगों, कृषि, परिवहन इत्यादि हेतु जल उपलब्ध करती हैं। अध्ययन क्षेत्र में अनेकों सरिताओं की उपस्थिति है, जो प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः अनेकों सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। प्रस्तुत अध्ययन, जनपद भिण्ड (म0प्र0) के अपवाह तन्त्र द्वारा प्रदत्त विभिन्न दशाओं व प्रभावों को नियोजित कर अध्ययन क्षेत्र का विकास सुनिश्चित किया जा सकता है।

विशिष्ट शब्दः परिवहन, खनिज, आपूर्ति, पौष्टिक, विकास।

प्रस्तावनाः

अपवाह तन्त्र धाराओं को जोड़ने वाला एक विशिष्ट तन्त्र होता है, जिसके माध्यम से घनीभूत होकर धरातल पर गिरने वाला जल एकत्रित होकर ढ़ाल का अनुसरण करते हुए, मुख्य जल राशि की ओर प्रवाहित होता है। सरिता तन्त्र में एक मुख्य धारा तथा अन्य सहायक धाराये, जो मुख्य धारा अथवा नदी में है, सम्मिलित होती हैं। सभी के सम्मि. लित प्रयास से अपवाह क्षेत्र के जल व अवसाद को आगे ले जाया जाता है। प्रवाही जल के विभिन्न अपरदनात्मक व निक्षेपात्मक कार्यों का प्रभाव, उससे सम्बंधित अपवाह क्षेत्रों पर पड़ता है। अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) में उपस्थित नदियों ने अपने अपवाह बेसिन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करने का प्रयास किया है। जहाँ एक ओर अध्ययन क्षेत्र में प्रवाहित नदियों ने अपनी अपरदनात्मक क्षमताओं से जनपद भिण्ड (म0प्र0) के विशाल उपजाऊ क्षेत्र को बीहड़ में परिवर्तित कर दिया है, वहीं दूसरी ओर अध्ययन क्षेत्र को सिंचाई हेतु जल, पेय जल प्रतिवर्ष बाढ़ काल में उपजाऊ मृदा की नवीन परत का निक्षेपण, मत्सयन हेतु अनुकूल दशाओं आदि को उपलब्ध कराकर लाभानिवत किया है। अपवाह तन्त्र द्वारा प्रदत्त जल के नियोजन की अध्ययन क्षेत्र में अतिआवश्यकता है, जिसकी सहायता से जनपद भिण्ड (म0प्र0) के विकास को गति प्राप्त होगी।

अध्ययन क्षेत्रः

मध्यप्रदेश राज्य की उत्तरी सीमा पर अवस्थित अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड

(म0प्र0) की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) का विस्तार 25^0 55′ उत्तरी अक्षांश से 26^0 48′ उत्तरी अक्षांश एवं 78^0 12′ पूर्वी देशान्तर से 79^0 05′ पूर्वी देशान्तर के मध्य है। अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक क्षेत्रफल 4459 वर्ग किमी0 है। प्रशासनिक दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) 07 तहसीलों, 06 विकास खण्डों, 447 ग्राम पंचायतों, 933 ग्रामों में विभक्त है। अध्ययन क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा 759.2 मिमी0 है, जबकि औसत तापमान 30^0 सेण्टीग्रेड से 36^0 सेण्टीग्रेड के मध्य रहता है। अध्ययन क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियो में चम्बल, क्वारी, सिन्ध, पहूज, बेसली इत्यादि प्रमुख हैं। प्रमुख व सहायक नदियो की सहायता से विकसित अपवाह तन्त्रों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से अध्ययन क्षेत्र को प्रभावित किया है।

जनपद भिण्ड (म0प्र0)

स्थिति एवं विस्तार

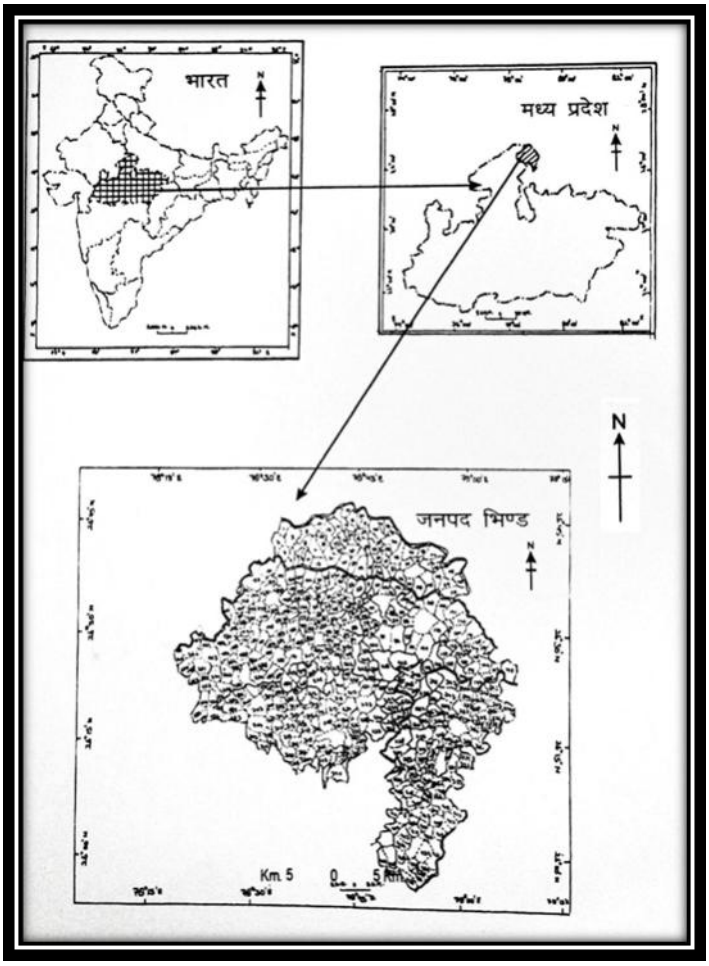

परिकल्पना निर्माणः

- ‘प्रवाही जल’ सिंचाई हेतु सहायक होता है।
- अपवाह तन्त्र का समुचित प्रबन्धन कृषि विकास में सहायक होता है।
- अपवाह तन्त्र में उपस्थित ‘जल संसाधन प्रबन्धन’ क्षेत्र विकास में सहयोगी होता है।
- ‘जल विकास’ औद्योगिक विकास में सहायक होता है।

उद्देश्यः

- अध्ययन क्षेत्र में सरिता वितरण को जानना।

- अपवाह तन्त्रों से सम्बंधित समस्याओं को चिन्हित कर समाधान प्रस्तुत करना।
- अध्ययन क्षेत्र में अपवाह तन्त्रों के जल हेतु संरक्षणात्मक विचार प्रस्तुत करना।
- अध्ययन क्षेत्र के विकास हेतु अपवाह प्रणाली के समुचित उपयोग की आधारशिला स्थापित करना।

विधितन्त्रः

प्रस्तुत शोध पत्र में वणित तथ्यों से सम्बंधित सूचनाओं एवं आंकड़ों का संकलन, विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण भूगोलवेत्ताओं एवं अन्य विद्यानों द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करते हुये किया जायेगा।

विश्लेषण एवं व्याख्या

नदी को घाटी को नियोजन की दृष्टि से एक आधारभूत जल संसाधन इकाई के रूप में माना जाता है तथा इसके जल ग्रहण क्षेत्र को सतही व भूमिगत जल प्रवाह के रूप में जाना जाता है। अग्रवाल (2001), जार्ज (2002), गुर्जर (2008) आदि ने प्रवाही जल के श्रोत, उसके संरक्षण, सम्बंधित समस्याओं को ज्ञात कर, उनके समाधान भी प्रस्तुत किये।

अपवाह तन्त्र :

किसी क्षेत्र का अपवाह तन्त्र, वहाँ के उच्चावच, संरचना, ढाल की प्रकृति एवं उसकी मात्रा द्वारा निध ार्रित होता है। अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) का अपवाह तन्त्र कोई अपवाद नहीं है। इस जनपद के उत्तरी क्षेत्र का ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर तथा दक्षिणी क्षेत्र का ढाल दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर है। जनपद के उत्तर में प्रवाहित होने वाली नदियाँ क्रमशः चम्बल व क्वारी पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होती हैं तथा दक्षिण में प्रवाहित होने वाली नदियाँ क्रमशः बेसिली, सिन्ध व पहूज तथा इनकी सहायक जल धाराएं दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। जनपद में प्रवाहित इन नदियों ने द्रुमाकृतिक अपवाह क्रम को जन्म दिया है। अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) के अपवाह तन्त्र को दो क्रमों में विभाजित किया जा सकता है।

- चम्बल नदी अपवाह क्रम
- सिन्ध अपवाह क्रम

चम्बल अपवाह क्रमः

चम्बल नदी अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) की सर्वप्रमुख नदी है। यह नदी अर्जुनपुरा ग्राम के समीप जनपद भिण्ड की सीमा में प्रवेश कर अर्जुनपुरा से विण्डवा ग्राम तक भिण्ड जिले की उत्तरी सीमा बनाती हुई, पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होकर भरेह व कंचारी ग्रामों के समीत पंचनदा नामक स्थान पर यमुना में विलीन हो जाती है। भिण्ड जनपद में, इस नदी का विसर्प प्रवाह मार्ग 77 किमी0 है। तीव्र प्रवाह जनित अपरदन के कारण इस नदी में अपने दोनों पार्श्वों पर 3 से 4 किमी0 तक दुर्गम, जटिल बीहड़ पट्टी को सृजित किया है। विभिन्न मौसमों में इस नदी के प्रवाह में विभिन्नता देखने को मिलती है। अच्छी सामान्य वर्षा ऋतु के वर्ष में इस नदी का जल प्रवाह 10900 मिलियम घनमीटर रहता है तथा शुष्क मौसम में 1400 मिलियन घनमीटर के लगभग रहता है। जनपद की प्रमु ख नदी होने के उपरान्त भी, यह नदी तीव्र ढ़ाल, तेज प्रवाह तथा अत्याधिक भूमि कटाव करने के कारण, अध्ययन क्षेत्र में यह नदी आर्थिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण है।

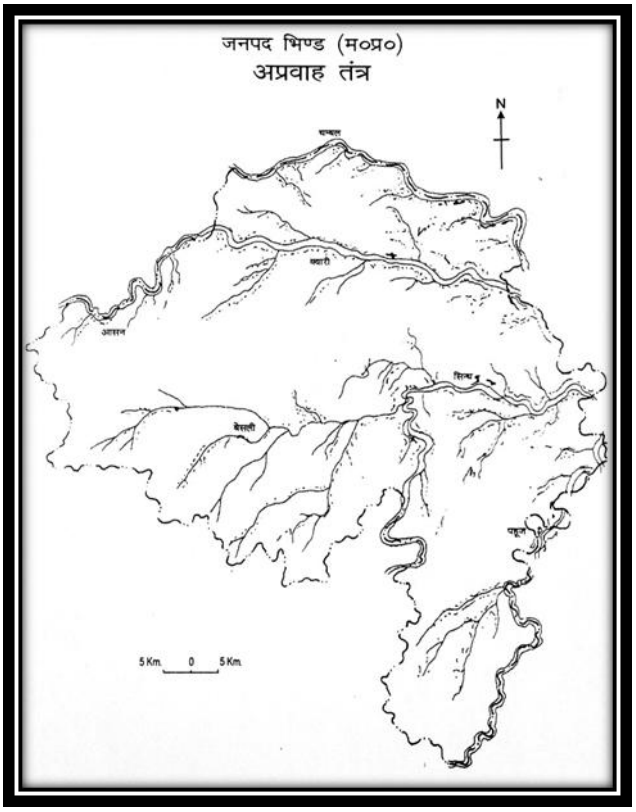

क्वारी नदी :

यह नदी जनपद भिण्ड की दूसरी बड़ी एवं प्रमुख नदी है। यह नदी भिण्ड, मुरैना जनपद की सीमा निध ारण करती हुई, अध्ययन क्षेत्र में दक्षिण में सुकाण्ड ग्राम से प्रवेश कर उत्तर की ओर लगभग 113 किमी0 प्रवाहित होकर इसकी दिशा पश्चिम से पूर्व हो जाती है। अध्ययन क्षेत्र में इस नदी के प्रवाह की मार्ग कुल लम्बाई 113 किमी0 है, जिसमें 74 किमी0 भिण्ड विकासखण्ड में तथा 39 किमी0 मेहगाँव विकासखण्ड में है। क्वारी नदी सिन्ध नदी की सबसे बड़ी सहायक नदी है, तथा मुरैना जिले के मुरैना पठार से निकल कर चम्बल नदी के दक्षिण में समानान्तर प्रवाहित होती हुई उत्तर–पूर्व में भिण्ड जिले के दक्षिणी सीमा के समीप सिन्ध नदी में मिल जाती है। विभिन्न मौसमों नदी में प्रवाह में अस्थिरता तथा पानी की अनुपलब्धता, वर्षा ऋतु में तीव्र प्रवाह तथा मृदा अपरदन के कारण यह नदी सिंचाई के लिए अनुपयोगी है।

सिन्ध नदी तन्त्रः

अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) की तीसरी प्रमुख, सिन्ध नदी विन्ध्याचल पर्वत से निकल कर मध्यप्रदेश राज्य के विदिशा, गुना, शिवपुरी, दतिया जनपदों में प्रवाहित होती हुई, 'गिरिवासा ग्राम' के समीप जनपद भिण्ड में प्रवेश करती है। जनपद के लहार, रौन तथा भिण्ड विकासखण्डों में प्रवाहित होती हुई उत्तर प्रदेश राज्य के इटावा व जालौन जिलों की सीमा पर अनेपा व कंजौसा ग्रामों के समीप यमुना नदी में मिल जाती है। भिण्ड जनपद में इस नदी के कुल प्रवाह मार्ग की लम्बाई 102.6 किमी0 लहार विकासखण्ड में है। क्वारी, वैशाली, पहूज इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं।

बेसली नदी :

यह सिन्ध की सहायक नदी है, जो ग्वालियर पठार से निकलकर आलौरी ग्राम के समीप भिण्ड जनपद में प्रवेश करती हुई, मेहगांव विकासखण्ड में 112 किमी0 प्रवाहित होकर, खेड़ा ग्राम के समीप सिन्ध नदी में मिल जाती

है। जनपद में, इस नदी की प्रवाह दिशा सामान्य रूप से पश्चिम से पूर्व की ओर है, किन्तु मेहगाँव विकासखण्ड में देवरी ग्राम से गढ़पारा तक प्रवाह दिशा दक्षिण से उत्तर की ओर है। ग्रीष्मकाल में यह नदी सूख जाती है, तथा सिंचाई की दृष्टि से यह नदी भी उपयोगी नहीं है।

पहूज नदी :

अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) के लहार विकासखण्ड की दक्षिणी–पूर्वी सीमा बनाती हुई, यह नदी दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होती हुई, 16.4 किमी0 के प्रवाहित मार्ग के साथ डिकौली तथा जायगा ग्रामों के समीप सिन्ध नदी मिल जाती है। ग्रीष्मकाल में यह नदी पूर्णतः सूख जाती है।

आसन नदीः

क्वारी नदी की सहायक आसन नदी शिवपुरी पठार से निकलकर बम्हौरी ग्राम के समीप भिण्ड जनपद के गोहद विकासखण्ड में प्रवेश करती है। भिण्ड जनपद में इस नदी की कुल प्रवाह मार्ग की लम्बाई 40 किमी0 है। आसन नदी पर मुरैना जिले के जौरा विकासखण्ड में पगारा तथा मुरैना विकासखण्ड में कोतवाल जलाशय निर्मित है। कोतवाल जलाशय से भिण्ड नहर निकलती है, जो गोहद, मेहगाँव, अटेर तथा भिण्ड विकासखण्डों में सिंचाई करने हेतु उपयोगी है।

उपर्युक्त प्रमुख नदियों के अतिरिक्त, जनपद में अनेक छोटे–छोटे नाले भी हैं, जिनमें सावन नाला एवं सवायन नाला प्रमुख है, जो वर्षा ऋतु में जल से प्लावित होकर वर्षा ऋतु में भयंकर अपरदन करते हैं। परिणामतः भूमि कटाव व्यापक पैमाने पर होता है।, जिससे कृषियोग्य भूमि के क्षेत्रफल में ह्रास देखने को मिलता है।

असंख्य समस्याओं जैसे अवनालिका अपरदन, बाढ़, जल अनियमितता, जल प्रदूषण, जल संरक्षण के अभाव इत्यादि समस्याओं को दूर करने की आवश्यकता है। इस हेतु नदियों पर 'इननडेशन चैनल' बनाये जायें, जल शोधन संयन्त्र स्थापित किये जायें, जनपद वासियों को जल प्रबन्धन हेतु प्रशिक्षित कर, उपर्युक्त समस्याओं को दूर कर न केवल अपवाह तन्त्र में उपस्थित जल का समुचित उपयोग व संरक्षण सुनिश्चित होगा, अपितु अध्ययन क्षेत्र के विविध पक्षीय विकास में भी सहयोग मिलेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- District Hand Book of Bhind (M.P.)
- Bali, J.S. (1972) : Ravine Reclamation Technology, New Delhi.
- Dube, R.S. (1968) : Erosion surface in the Rewa Plateau, 21st I.G.C., New Delhi.
- Mishra R.P. (1979) : Regional Planning and National Development, New Delhi.
- गुर्जर, आर0के0 एवं जाट बी0सी0 (2001) जल प्रबन्ध विज्ञान, पोइंटर पब्लिकेशन, जयपुर।
- जाट, बी0सी0 (2009) : जल ग्रहण प्रबन्धन पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर।

हिंदी सिनेमा के सामाजिक सरोकार

(सत्तर के दशक (1970-1979) की स्त्री-केंद्रित हिंदी फिल्मों के विशेष संदर्भ में)

सिनेमा के समीक्षकों/आलोचकों के समक्ष एक अनसुलझा सवाल हमेशा मुंह बाए खड़ा रहता है कि सिनेमा कला है या व्यवसाय? ज्यादातर आलोचक सिनेमा को कला-रूप ही मानते हैं। उनका यह कहना है कि सिनेमा एक कला माध्यम है जिसमें समस्त अन्य कलाओं का समावेश होता है। अब यदि सिनेमा को कला माध्यम माना जाए तो अन्य कलाओं की तरह ही इसका (फिल्मों का) समाज के प्रति उत्तरदायित्व होना चाहिए। अर्थात सिनेमा के सामाजिक सरोकार भी होंगे ऐसा कहा जा सकता है।

हम सभी जानते हैं कि किसी भी देश में बनने वाली फिल्में वहाँ के समाज और संस्कृति का प्रतिबिंब होती हैं । हिंदी फिल्मों का संबंध भी अपने समय और भारतीय समाज से है। भारतीय समाज इन फिल्मों के प्रभाव से बच नहीं सकता क्योंकि हिंदी फिल्में इसी समाज में रहने वाले दर्शकों के लिए बनाई जाती है, चाहे फिल्मकार का उद्धेश्य विशुद्ध मनोरंजन/व्यवसाय अथवा विशुद्ध कलात्मक अभिव्यक्ति हो। आमतौर पर लोग सिनेमा को केवल मनोरंजन का माध्यम मानते हैं और 'सिनेमा के सामाजिक सरोकार' विषय पर बात करने से कतराते हैं। यह एक गलत परंपरा है क्योंकि इस मान्यता के विपरीत दृश्य/श्रव्य माध्यम होने के कारण सिने-कला, कला के अन्य रूपों के बनिस्पत मानव मस्तिष्क पर तुरंत तथा व्यापक असर डालती है। जिससे कि सिनेमा के सामाजिक उत्तरदायित्व के सबसे पुख्ता उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

उपर्युक्त संदर्भ में मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि हिंदी सिनेमा में सबकुछ अच्छा-ही-अच्छा होता आया है। अर्थात हिंदी सिनेमा हमेशा सकारात्मक संदेश ही दर्शकों को संप्रेषित करता है। बल्कि यहाँ यह समझना ज्यादा जरूरी है कि हिंदी सिनेमा ने यदि भाग्यवाद, सामंती आदर्शवाद, यथास्थितिवाद, प्रतिशोध पर आधारित बर्बरता, भोगवाद और विलासिता को प्रोत्साहित किया है तो दूसरी तरफ ऐसी फिल्मों का निर्माण भी लगातार जारी है जिनमें शांति, अहिंसा, शिक्षा, धार्मिक सदभाव, समुदायिक एकता, इंसानी भाईचारा, गरीबों उतपीड़ितों अथवा हशिए के लोगों के प्रति गहरी सहानुभूति का भाव हो।

उपरोक्त सारे विषयों पर एक शोध आलेख में बात करना दुष्कर कार्य है , अतः अपने इस

हिंदी सिनेमा ने यदि भाग्यवाद, सामंती आदर्शवाद, यथास्थितिवाद, प्रतिशोध पर आधारित बर्बरता, भोगवाद और विलासिता को प्रोत्साहित किया है तो दूसरी तरफ ऐसी फिल्मों का निर्माण भी लगातार जारी है जिनमें शांति, अहिंसा, शिक्षा, धार्मिक सदभाव, समुदायिक एकता, इंसानी भाईचारा, गरीबों उतपीड़ितों अथवा हशिए के लोगों के प्रति गहरी सहानुभूति का भाव हो।

आशीष कुमार
शोधार्थी, पीएच.डी.
प्रदर्शनकारी कला
(फ़िल्म एवं रंगमंच)
मो.- 9579667774
ई.मेल- ashishku-marphd@yahoo.com

शोध आलेख में मैं हिंदी सिनेमा के निर्देशकों द्वारा एक ख़ास सामजिक सरोकार के अंतर्गत बनाई गई स्त्री –केंद्रित फिल्मों की चर्चा करूंगा जो सत्तर के दशक (1970-1979) के हिंदी फिल्मों पर आधारित होगा।

1972 ई.में मृणालसेन द्वारा निर्देशित 'मायादर्पण' एक असाधारण समझ वाली फिल्म है। जहाँ कंटेंट तथा फार्म को अलग -अलग देखना असंगत होगा। यद्यपि इस फिल्म का केंद्रीय-चरित्र एक स्त्री है और उसी के मुख्य-विषय के रूप में फिल्म के माध्यम से दिखाया गया है। इस फिल्म में स्त्री की दुनियाँ सीधे आख्यानात्मक विवरण के द्वारा नहीं दिखाया गया है बल्कि यह दर्शकों को उच्च क्वालीटी के सेनसनेस से आच्छादित कर देती है, जो कि हिंदी-सिनेमा के इतिहास में दुर्लभ है। यह फिल्म अपने थीम तथा ट्रीटमेंट में बिलकुल वास्तविक लगती है।

कला फिल्मों में ही वास्तव में स्त्री की दुनियाँ को नारीवादी परिप्रेक्ष्य से दिखाने की कोशिश की गई है। इन फिल्मों में तो स्त्रियों को अपना अधिकार नहीं मिलने पर लड़ते हुए/संघर्ष करते हुए अधिकार छिनने तक को दिखाया गया है। इन फिल्मों में एक बात गौर करने लायक है कि कला फिल्मों में शहरी स्त्रियों को तो अपने परिवार से संघर्ष करते अथवा वैवाहिक जीवन में होने वाले शोषण से विरोध करते दिखाया गया किंतु ग्रामीण स्त्रियों को उन्हीं अत्याचारों को झेलते हुए ही दिखाया गया है। श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित इस दौर की सभी फिल्मों में मुख्य पात्र महिलाएँ ही रही हैं जिनका शोषण उनका परिवार, समाज या पितृ-सत्तात्मक समाज करता है । इस तरह की फिल्मों में स्त्रियों को दबाने तथा उनके अधिकारों से उन्हें वंचित रखने में महती भूमिका अदा खुद उसका जीवनसाथी करता है।

सन् 1974 में आई 'अंकुर' में शबाना आजमी को लक्ष्मी के रूप में सहज तथा कामुक दिखाने की कोशिश की गई है। मुख्यधारा के हिंदी-सिनेमा की उस समय की स्त्री छवि 'ग्लैमर-डॉल' से इन फिल्मों की स्त्रियों को अलग तरीके से चित्रित किया गया है। पूरी फिल्म में मुख्य चरित्र लक्ष्मी के कई कभी न भूलने वाले छवि से दर्शक रू-ब-रू होता है। लक्ष्मी अपने मालिक को पूरी गरिमा के साथ उसके साथ वापस जाने से मना करती है। उसका मालिक सूर्या (अनंत नाग) जब उसे वापस चलने के लिए प्रार्थना कर रहा होता है और अपने कृत्य के लिए माफी माँग रहा होता है तो लक्ष्मी के चेहरे पर विजय भावना के निशान स्पष्ट देखने को मिलता है। अपने मालिक के विनम्र निवेदन को लक्ष्मी बहुत प्रतिक्रियावादी तरीके से नहीं लेती। उसे जब पता चलता है कि वह गर्भवती है तो वह चीखती-चिल्लाती नहीं है। बल्कि अपने गर्भ को स्वीकार कर वह बहुत शांत तरीके से काम पर जाती है। वह जमींदार (अनंत नाग) के कहने के बावजूद भी जब गर्भपात नहीं करवाती है तब इसका बदला उसके गूंगे-बहरे पति से लेने की कोशिश की जाती है। जब लक्ष्मी का पति अनाज चोरी के मामले में पकड़ा जाता है तब लक्ष्मी का मालिक/जमींदार/शोषक/सूर्या उस बेचारे (गूंगे-बहरे) के चेहरे को कालिख से पोतकर, गधे पर बैठाकर पूरे गाँव में घुमाता है। सूर्या के इस अत्याचार से लक्ष्मी बहुत आहत होती है और वह जमींदार को बहुत कोसती है। इस दृश्य में सूर्या (जमींदार) दरवाजा बंद कर बेचैनी से उसे सुन रहा होता है। इस दृश्य में जमींदार युवक के प्रति निर्देशक की थोड़ी सहानुभूति का बोध होता है। उसे जिस रूप में दिखाया गया है यानि उस समय कैमरा से जो क्लोज-अप अंकित होता है उससे जमींदार युवक में परिवर्तन जैसी अनुभूति होती है।

लक्ष्मी द्वारा अपने शराबी तथा गूंगे-बहरे पति के लिए हुए अचानक झुकाव को हम स्त्रियों के स्टीरीयोटाइप चित्रण में ही रख कर देख सकते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि हमारा समाज इस बात को बहुत आदर्शीकृत करता है कि चाहे पति जैसा भी हो वह पति है, भगवान के बराबर है और स्त्रियों को हमेशा इसका ख्याल रखना चाहिए। लेकिन जब जमींदार सूर्या (अनंत नाग) को यह लगता है कि लक्ष्मी के गर्भवती होने का कारण वह खुद है यह गाँव वाले को पता चल जाएगा और उसकी बदनामी होगी तो वह लक्ष्मी को अपने यहाँ से जाने को कहता है। वह लक्ष्मी से कहता है 'तुम्हें अपने इस कृत्य पर अर्थात् गर्भवती होने की घटना पर शर्म नहीं आती" तो लक्ष्मी का जवाब होता है- (वह कठोरता से प्रत्युत्तर में कहती है)- क्या तुम्हें शर्म नहीं आती? फिल्म के अंत से कुछ क्षण पहले एक स्त्री द्वारा एक पुरुष जो उसके गर्भ में पल रहे बच्चे का बाप है को धिक्कारना दिखाया जाना पूरी फिल्म में स्त्री की दुनियाँ के चित्रण को सार्थक बनाता नजर आता है और फिल्म का यह दृश्य दर्शक के मानस पटल पर अंकित हो जाता है सदा के लिए।

सन् 1977 ई.में आई 'भूमिका' जिसका निर्देशन श्याम बेनेगल ने किया था। 80 के दशक में भारतीय उत्तर-औपनिवेशिक इतिहास-लेखन ने पारंपरिक पुरुष-वर्चस्व से आक्रांत इतिहास-लेखन के कई बंद दरवाजों को खोला तथा इतिहास-अध्ययन में स्त्रीवादी-चिंतन को स्थान मिला। यह फिल्म इस दौर के यथार्थवादी सामाजिक-दृष्टि और इसी बौद्धिक उभार का एक कलात्मक प्रतिफल है। भारतीय समाज में स्त्री-संबंधी दृष्टिकोण में समय के साथ गुणात्मक परिवर्तन आए और कहना न होगा कि इसमें बेनेगल के 'भूमिका' का महत्व क्या है।

प्रसिद्ध फिल्म-अभिनेत्री (मराठी) हंसा वाडेकर की आत्मकथा 'सांगत्ये आएका' पर आधारित है 'भूमिका' जिसकी पटकथा स्वयं श्याम बेनेगल ने गिरीश कर्नाड और पंडित सत्यदेव दुबे के साथ मिलकर लिखी है। "'सांगत्ये आएका' संभवत: भारतीय साहित्य की परंपरा में किसी भी स्त्री के द्वारा लिखी गई ऐसी पहली आत्मकथा है जिसमें घरेलू-हिंसा से लेकर, बालशोषण और पुरुषों के द्वारा किए गए यौन-शोषण का इतना बेबाक बयान किया गया है। एक स्त्री होने के नाते बचपन से लेकर जवानी तक हंसा ने अपने को वस्तु हो जाने की नियति को रेशा-रेशा उधेड़कर देखा है। हंसा की यह आत्मकथा हिंदुस्तानी समाज की आम स्त्रियों की पीड़ा का दस्तावेज है, जिसमें घर से लेकर बाहर तक पति, मित्र, प्रेमी सबने एक वस्तु के रूप में उसका उपयोग किया। श्याम बेनेगल ने एक काल्पनिक पात्र उषा (स्मिता पाटिल) के बहाने हंसा की अनदेखी जीवन-कला को सांस्कृतिक-समीक्षा के रूप में प्रस्तुत कर आम भारतीय-नारी की पीड़ा का महाकाव्य रचा है।

भूमिका में अमोल पालेकर ने उषा के पति का किरदार निभाया है। वह स्वयं जुआरी, शराबी, ऐशपसंद और पत्नी की कमाई पर मौज करने वाला इंसान है और पुरुषवादी-मानसिकता के कारण इस हीनग्रंथी का शिकार भी है कि पत्नी की कमाई पर पल रहा है। अपनी इसी हीनताभाव के कारण वह उषा के चरित्र पर आक्षेप लगाता रहता है। ऐसा करने का एक महत्वपूर्ण कारण उषा पर मनोवैज्ञानिक दबाव बनाना होता होगा। ऐसा फिल्म से ध्वनित नहीं होता बल्कि व्यंजित होता है। ऐसे में ही उषा के अलग बैंक अकाउंट खोलने का राज उसके पति पर जाहिर होता है। उषा का उद्देश्य ऐसा करके अपनी बेटी के भविष्य को सुरक्षित करने

का है, पर केशव (उसका पति) उषा के मंतव्य को समझता नहीं या कि समझना नहीं चाहता। वह भयाक्रांत है कि उषा इस तरह से उसकी निर्भरता से बाहर हो जाएगी। भारतीय स्त्री की यह विडंबना रही है कि उसकी अपनी कमाई पर भी उसका पति, पिता या भाई अपना मौलिक अधिकार समझता है। फ्रांस में स्त्रीवादी आंदोलन की सूत्रधार सिमोन द बोउआर ने अपनी पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' में विस्तार से इस बात का विश्लेषण प्रस्तुत किया है कि एक स्त्री की आजादी का रास्ता उसकी आर्थिक आजादी से प्रशस्त होता है। पर स्त्री की आजाद-ख्याल पुरुष वर्चस्व को चुनौती देकर ही संभव है, क्योंकि स्त्री-पुरुष के संबंधों में सामंती मूल्यबोध के आरोपन से पुरुषों ने कृत्रिम रूप से एक शक्ति-संघर्ष की स्थापना कर रखी है और अपने वर्चस्व को वह कुशलता से एक संस्थागत रूप दे रखा है| श्याम बेनेगल ने 'भूमिका' के माध्यम से न केवल स्त्री-अस्मिता के सवाल पर बहस किया बल्कि इस स्टीरियोटाइपिंग को भी तोड़ा कि एक स्त्री को जीने के लिए एक पुरुष की अनिवार्य आवश्यकता होती है। हम 'भूमिका' में देखते हैं की उषा न केवल पति के शोषण का शिकार होती है, बल्कि मित्र, प्रेमी, सबने उसके स्त्री होने का फायदा उठाया है। विश्वसनीय साथी की तलाश से निराश होकर उषा अकेले रहने का निर्णय लेती है। यही इस फिल्म का चरमोत्कर्ष (Climax) तथा संदेश है।

श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित 'निशांत' (1975 ई।) में विश्वम और उसके भाई एक प्राथमिक पाठशाला के मास्टर (गिरीश कर्नाड) की पत्नी (शबाना आजमी) का अपहरण कर लेते हैं। अपनी हवस के लिए सुशीला का शारीरिक-शोषण करना उनका एकमात्र उद्देश्य होता है। मास्टर द्वारा जमींदार से अपनी पत्नी को वापस करने की प्रार्थना विफल होती है। हताश और मजबूर मास्टर पंचायत, पुलिस स्टेशन, जिले के कलेक्टर आदि से गुहार लगाता है पर कहीं से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। अखबार का संपादक तक इस दुर्दांत घटना पर हैरतजदा होने के बजाए मास्टर को अखबार के नाम एक खत लिखने की सलाह देता है जबकि मास्टर इसे खत के रूप में नहीं खबर के रूप में छपवाना चाहता है। अखबार का संपादक मजबूरी का बहाना बनाता है और कहता है- 'भैया', अगर यह खबर छाप दें तो शायद छापाखाना बेचना पड़ेगा। इज्जत का दावा कर दिया उन लोगों ने, तो हर्जाना भरते-भरते दिवाला पिट जाएगा, हताश मास्टर मंदिर के पुजारी की सहायता से गाँव के लोगों को एकत्र करता है और उनके समक्ष अपनी पत्नी के अपहरण को विराट सामाजिक घटना के रूप में प्रस्तुत करता है। सदियों से भयभीत समाज अचानक इस घटना के प्रति विद्रोही नहीं हो पाता है। लेकिन पुजारी तथा मास्टर अपना प्रयास जारी रखते हैं। सदियों से चली आ रही शोषण की यह परंपरा सुशीला के रूप में मूर्त हो उठती है और देवी पूजन के दिन संगठित किसानों और मजदूरों का समूह नियोजित रूप से ठाकुर की हवेली पर हमला बोल देते हैं। वर्षों से दबा हुआ जनता का आक्रोश बेहद हिंसक हो जाता है। जमींदार अपने सभी भाइयों सहित मारा जाता है। इस हिंसा में जमींदार विश्वास की पत्नी रूक्मिणी (स्मिता पाटिल) और सुशीला भी मारी जाती है जबकि ये महिलाएँ स्वयं भी एक स्त्री के रूप में उन जमींदारों के थोथे मूल्यों और झूठी शानो-शौकत का ग्रास बनी हुई है। साथ ही साथ अपने अस्तित्वबोध के संकट से भी परेशान होती है। रुक्मिणी और सुशीला का इस फिल्म के अंत में हिंसा का शिकार हो जाना कष्टप्रद अवश्य है,पर वह जिस आक्रोश का शिकार होती है उसमें तार्किक होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। रूक्मिणी की मौत से उपजे उहापोह को पंडित ने अपने सात्विक अभिनय से सवाक कर दिया है। अचानक उठ खड़े हुए इस तूफान ने अमानवीय और

शोषण पर आधारित तथा अंधेरे की हिमायती इस व्यवस्था का अंत कर अंध युग से बाहर आने की घोषणा कर दी। 'निशांत' स्त्रियों के लिए भी अंधेरगर्दी के अंत की घोषणा है।

जिन फिल्मों की चर्चा यहाँ की गई उसके निर्माण की पृष्ठभूमि पर बात करना यहाँ आवश्यक है। जनवरी, 1968 में मृणाल सेन और अरुण कॉल ने एक घोषणा- पत्र तैयार किया था जिसमें हिंदी फिल्मों पर व्यावसायिकता का एकाधिकार, फ़िल्म निर्माण की फार्मुलाबद्धता, कलात्मक सौंदर्य दृष्टि का अभाव, दर्शकों के बौद्धिक और मानसिक विकास के बदले निम्नस्तरीय, कुत्सित और कुरुचिपूर्ण फ़िल्म- दृश्यों के प्रति नशीला आकर्षण उत्तपन्न करने का फ़िल्म निर्माता का प्रयत्न, वितरण और प्रदर्शन के क्षेत्र में अच्छी फिल्मों को प्रवेश न करने देने के षड्यंत्र, सामजिक और मानवीय समस्याओं की उपेक्षा, थोड़े मनोरंजन द्वारा मात्र धन कमाने की लिप्सा आदि की चर्चा करते हुए विकल्प के रूप में नए सिनेमा की आवश्यकता, उपयोगिता और उसके उद्धेश्यों पर प्रकाश डाला गया था। इस घोषणा-पत्र में नया सिनेमा की कोई संतोषप्रद परिभाषा नहीं गढ़ी गई थी, जो कि तब संभव भी नहीं था, क्योंकि परिभाषाएं या आलोचना सर्जना पश्चात ही संभव हो पाती हैं। लेकिन यह स्पष्ट रूप से लिखा गया था कि

" व्यावसायिक सिनेमा की कुत्सित रुचि के विरुद्ध नया सिनेमा एक बेहतर सिनेमा के लिए अनवरत और चेतनायुक्त आन्दोलन है। अनेक देशों में इस प्रकार के आन्दोलन सामने आए हैं। हमारा विश्वास है कि इस आन्दोलन को पनपने के लिए सही जलवायु यहाँ मौजूद है।"

इस तरह से सत्तर के दशक की शुरुआत से ही हिंदी फिल्मों का दो धाराओं में विभाजन हो गया। एक धारा बड़ी-बड़ी बजट की, आम लोगों के रंग-बिरंगे सपनों को संजोए नाच- गाना, प्रेम कहानियों और मार पीट से भरपूर, दर्शकों के लिए उनका पूरा पैसा वसूल के सिद्धांत पर फ़िल्में बनाने लगी तो ठीक इसके सामानांतर दूसरी धारा/ नई धारा ने कम बजट की फिल्मों का निर्माण किया जिसमें आम लोगों के जीवन पर देश की विकराल राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से प्रभावित और यथार्थवादी कथाओं पर आधारित सार्थक कला फिल्मों का निर्माण शामिल था।

इस आलेख में जिन फिल्मों की चर्चा की गई है वे इसी नयी धारा के अंतर्गत बनाई गई थी जो समाज के प्रति विशेष सरोकार के तहत बनाई गई और अपने समय काल में उस उद्धेश्य में सफल भी रही। विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि 70 के दशक का हिंदी सिनेमा स्त्री की दुनिया को बेबाकी से दिखा रहा था। स्त्री –जीवन के मुद्दों एवं समस्याओं को लेकर हिंदी सिनेमा ईमानदार भूमिका निभा रहा था। साथ ही साथ उस समय की फिल्में समाज के यथार्थ को भी दर्शक के सामने लाने का प्रयास कर रही थी।

संदर्भ- ग्रंथ:

- ओझा अनुपम, *भारतीय सिने सिद्धांत*, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 2009.
- सिन्हा प्रसून, *भारतीय सिनेमा: एक अनंत यात्रा,* श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2006.

- कुमार कौशल, *'श्याम बेनेगल कला की जीवनधर्मिता का हिमायती'*, समसामयिक सृजन, अक्टूबर-मार्च, 2012-13 (संयुक्तांक).
- पारख जवरीमल; *लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ,* अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, 2001.
- अग्रवाल प्रहलाद (संपादक); *हिंदी-सिनेमा बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक,* साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009.
- परवीन फरहत (सं.), *सामाजिक मूल्यों से स्त्री का अंतर्द्वंद्व*, आजकल, मार्च, 2014, दिल्ली
- पारख जवरीमल ; *हिंदी सिनेमा का समाज शास्त्र*, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली 2006
- Somaaya Bhawana, Kothari Jigna, Madangarli Supriya; *Mother Maiden Mistress: Women in Hindi Cinema, 1950-2010*, Harper Collins, India, Delhi.

YOGA DIPLOMACY AS INDIA'S SOFT POWER: PROJECTING THE 'IDEA OF INDIA'

Dr Sanjeev Kumar Tiwari

Associate Professor

Department of Political Science,

Maharaja Agrasen College,

University of Delhi.

sanjeevtiwaridu@gmail.com

Abstract

The effective use of Yoga as a diplomatic tool in India's soft power projection is revitalising the 'idea of India' in the minds of people abroad. The cultural-spiritual discourse of contextualising Yoga to the rich civilisational heritage is forming the strategic link for India to increase its sphere of influence in global politics. This narrative is augmented by the five principles of Indian foreign policy namely—Samman (dignity), Samvaad (dialogue), Samriddhi (shared prosperity), Suraksha (regional and global security), and Sanskriti evam Sabhyata (Cultural and civilizational links), which have been espoused and enmeshed with the broader economic and political goals of the country. India,in order to be 'vishwaguru' or world teacher,is expanding its cultural footprint and the political-ethical inheritance in the geopolitical framework of global politics putting a premium on the 'idea of India'. Yoga is an invaluable gift of Indian ancient tradition to the world, where it embodies unity of mind and body; thought and action; and restraint and fulfilment, fostering mutual cultural connections and promoting peace.

It is in this backdrop that the paper explores the concept of soft power and the debate surrounding hard power versus soft power in international politics. Further, the paper examines briefly the various soft power assets along with India's soft power sources. Finally, the paper explores Yoga as a diplomatic tool and as to how it helps in the projection of 'idea of India' abroad.

Keywords: *yoga, diplomacy, soft power, hard power, spiritual legacy, foreign policy.*

Introduction

The increasing acceptance of yoga globallyand the soft power projection of India through yoga as a diplomatic tool has helped in preserving and promoting the traditions, art and culture of India. It projects an 'idea of India' which transcends time and space, where the Indian spiritual tradition acts as a cultural force in world affairs. Therefore, 'recognising its worldwide appeal, on 11 December 2014, the United Nations proclaimed 21 June as the International Day of Yoga by resolution 69/131' (United Nations 2017). This diplomatic victory has certainly helped India increase its global cultural footprint. The integration of economic and political diplomacy with public diplomacy is helping bridge the cultural gap bringing people closer and forging deeper bonds. It also fosters political and economic interactions building trust, understanding and respect between nations (Ministry of Foreign Affairs 2017).

The interconnected and interdependent nature of the world today throws various challenges for humanity. The globalisation of extremism, severe impacts of climate change, along with rising aspirations of people have created conditions where societies and governments world over have to respond at the earliest (Press Information Bureau 2015). The growing diversities and divergences in the plural social fabric of the world today have to be accommodated fairly in order to maintain peace and order. It is in this context that the rich Indian civilisational tradition of *Vasudhaiva Kutumbakam,* or 'world is one family', and *Sarve Janaah Sukhino Bhavantu* (Press Information Bureau 2014),or 'may all be happy without sorrow and pain' which is the guiding force of India since Vedic ages can cure the world of its evils (Lakshman 2016). It preaches the righteous path of happiness,compassion, tolerance and universal brotherhood to humanity. The appeal of yoga as a physical, mental and spiritual wellbeing form can be used to counter such trends quite effectively. It embarks the self on the path of self-exploration leading to the spirit of oneness with the collective. Yoga is, thus, not only a physical exercise but is a cultural and spiritual way of life.

It is in this spiritual and cultural context that Indian soft power is defined and its non-coercive nature is induced. India, being a buoyant economy with political firmness and sound military, space and scien-

tific capabilities with a youthful population, aspires for a 'great power' status as a 'world leader' in the 21st century. But it is not the economic growth (as India is already the fifth largest economy in the world), or military strength (as India is the fourth largest army in the world) or nuclear capacity which solely has the potential to make India a world leader (Tharoor 2009). Rather it is the soft power potentials the country has in the form of its rich cultural heritage, spiritual traditions and dharmic teachings which create the settings for India to be a global leader. From Buddhism to Bollywood and from Yoga to Indian Cuisines, all have shaped India's soft power from being a latent to a more dynamic force in public diplomacy. In all this the Indian Diaspora spread across the world have been the bridge that has connected the world with the Indian culture and acted as agents of India's soft power projections showcasing the 'idea of India' abroad. Therefore, strength of soft power lies in its non-deliberate and non-coercive nature and any nation cannot conquer others' heart by force or persuasion, but only by choice and appeal. As cultures cannot be imposed; it could only have an appeal, or be self-promoting, therefore hard power is exercised while soft power is evoked. It creates perception, an idea or imagination about the 'other' which helps build trust and relations (Ibid.). The wide acceptance of yoga has helped in forwarding Indian soft power at a global stage. It has given India the strategic advantage where it can leverage yoga as a potent soft power tool to increase its sphere of influence.

It is in this backdrop the paper has examined yoga as a diplomatic tool in India's soft power. It has further argued that the spiritual tradition and cultural heritage of yoga has helped in not only promoting and preserving Indian cultural legacy but has also led to the projection of the 'idea of India'. Finally, the paper ends with an evaluation of India's global power aspirations and how far has it been able to achieve it using its soft power as compared to hard power.

Hard Power versus Soft Power: The Debate

The distinction between the two strands of power was made by Joseph Nye more than two decades ago during the post-Cold War period in early 1990s. It was during this time that an analysis of United States

of America's (US) dominance as a super power in the world was witnessed after the collapse of the Soviet Union. Nye suggested that it was by the virtue of the combination of both hard power and soft power that went in making America the dominant super power. Hard power for Nye is seen as the "ability to affect others to get the outcomes one wants" which is generally achieved by wielding command or hard power as a coercive power exercised through enticements or intimidations (Nye 2011: 11).Hard power is fashioned on armed intervention, coercive diplomacy and economic sanctions (Wilson 2008: 114) and is dependent on visible power resources such as armed forces or economic means (Gallarotti 2011: 45). Thus, the Soviet invasion of Afghanistan in 1979, American invasion of Vietnam, Iraq, etc. and the recent economic sanctions against Iran are examples for the use of hard power in global politics.

The use of soft power in diplomacy is relatively new in the arena of international relations. Nye used it in the context of American dominance over the world seen beyond the notion of its military supremacy in the post-Cold War period. He took the concept of power past its traditional understanding, i.e. 'the ability to alter the behaviour of others to get what you want'. He further goes on to add 'there are basically three ways to do that: coercion (sticks or military), payments (carrots or economy), and attraction (soft power)' (Nye 1990: 153). Today, the channels of interactions between the states have expanded where ideological appeal and cultural attractions play a dominant role in comparison to military and economic influences. The recognition of the implication of horizontal (within communities and people to people) level of interaction has had a far reaching impact on the conduct of diplomacy in the 21st century.

In the globalised world of complex interdependence the efficacy of soft and hard power in international relations hugely depends on the ease of access to power resources (Heywood 2011). As larger states with large economy are better placed to maintain huge army and, thus, can put other states with smaller economy and military strengths under pressure. For the smaller countries these conventional tools of hard power are harder to maintain.In fact, the accessibility of soft power resources does not depend

much on the size of the states geographically, economically or demographically. This is evident from the cases of Nordic countries which have been able to project sound soft power capabilities even though they are categorised as small states (Nye 2004: 112; Leonard 2002: 53). Further, the states cannot have a monopolistic control over soft power as it is more of people to people exercise where choices, behaviour and attitudes can be influenced but never controlled. Therefore, soft power hugely relies on the attractiveness of ideas and other cultural assets. These cultural assets are self-promoting and help in creating a perception in the minds of the people about the 'other' which no governments can have control on. Government can be aggressive in using their soft power assets but can never be able to control the outcomes which mostly depend on appeal and attraction. Hard power, on the other hand, is primarily a government to government exercise where the proper channels of traditional diplomacy are used to pursue national interests.

Soft Power Assets in International Politics

As soft power is more of a people to people exercise, it can be wielded by both the state as well as the non-state actors in international politics. Multi-track diplomacy is further augmenting the spread of soft power abroad. This includes channels of interactions which are used to broadcast information about any countries' cultural and spiritual legacies to develop an 'idea' about that state. In doing so, soft power assets are used effectively to create a brand value. The assets such as a state's ideological strand, civilisational heritage, national culture, spiritual traditions and religious connections form the basis of its cultural-spiritual legacy. At the same time, geopolitical position in global politics, political-economic developmental model, democratic values, secular tradition, governance systems and the ability to dissipate information, etc. are the products of state's political-ethical inheritances. The socio-cultural assets are represented in life style, quality and standard of living, value systems, popular and high culture, art, literature, film, theatre, music and dance(classical and modern), education, creative capacity, etc.

India, in this context, has a vast array of soft power resources at its disposal, based on its ancient civilisation and cultural heritage, including yoga and spirituality, classical and modern music and dance, Bolly-

wood movies, television serials (both fictional and mythological), cuisine, traditional medicine (Ayurveda), tourism, education, healthcare, democracy, etc. India's political and ethical inheritance which includes its long tradition of secularism, i.e. treating all religions equally or 'sarva dharma sambhava', principles of non-violence and democracy have all thrived in multicultural plural society even before the West came to terms with multiculturalism. The intermingling of cultures and religions has led to the evolution of an Indian Sufism and a unique Indian cuisine; both of which have taken a little from different sources and metamorphosed into distinctly "Indian". On the other hand, India's philosophy of 'Vasudhaiva Kutumbakam' with its message of coexistence, oneness, love, tolerance and understanding is particularly relevant in today's world which is driven by divisiveness, intolerance and extremism. India's soft power not only includes wielding its cultural appeal and 'image building' but also in providing technical assistance, training and aid to other developing countries in Asia and Africa under the aegis of South-South cooperation (Ministry of External Affairs 2016).

Historical Perspective on Cultural-Spiritual Legacy of India

The rich civilisational heritage of India has cemented India's position as spiritual guru in the region and beyond. Its incredible cultural power and dharmic traditions has had a profound impact on the world for thousands of years. The great philosophical teachings of Dharma, Karma and Forgiveness form the very foundation of Indian spiritual being. The classics, like the Vedas, the Upanishads, the Bhagavad Gita and the Dhammapada are all product of the Indian cultural-spiritual legacy. With its ancient roots, the Indian culture has been the guiding force of all humanity looking for inner peace and tranquility. The indigenous knowledge system of yoga, meditation, and Ayurveda along with various sophisticated artistic and intellectual culture had a transforming effect on human mind and body. The teachings of Hinduism and Buddhism taught the world to renounce the worldly pleasure for a greater cause. The Indian philosophical strands like the Samkhya, Yoga, Vedanta, Mimamsa, Nyaya, and Vaisheshika have a profound bearing on human mind with the ideas of samsara, moksha, purusha (soul) and prakriti (matter, energy, and agency) (Mohanty 2014).

It was only because of the strength of India's civilisational values and ethos that the Indian philosophy and religion spread to the different parts of the world. The countries of South, South-East and East Asia have been the major beneficiary of Indian cultural-spiritual legacies. Frawley's argument makes it evident when he says that:

> India's civilisation was honored in ancient Greece and Rome on intellectual, spiritual and economic levels. Indo-European traditions that dominated ancient Europe like the Celts, Germans and Slavs had much in common with India's older Vedic culture. India had a significant influence on Central Asia through Afghanistan, which for many centuries was part of an Indic and Buddhist cultural sphere, including the Silk Trail. India's maritime influence along the Spice Trail brought many cultural influences through the Indo-Pacific region as well. Such Indian civilisational influences flourished from ancient periods up to the Islamic era starting in the eighth century, when these began to decline – a decline that increased during the colonial era when the British suppressed India's native culture and its extensive networks of trade and communication, supplanting them with its own. Yet while India's civilisational influence declined, it did persist. India's science and medicine reached the Islamic world, like the Arab adaptation of India's decimal system starting in the ninth century. From the eighteenth century, western thinkers came into contact with Hindu and Buddhist thought. One can mention such notable figures as Voltaire, Goethe, Schopenhauer, Emerson and Thoreau among those who expressed their admiration for India. (Frawley 2017)

India has always been a spiritual gateway for the world and it was through Swami Vivekananda's initiative during the early 1890s during one of his visits to the US that led to the resurgence of Indian culture abroad. He introduced the West with yoga-based teachings and practices which emphasised on universal consciousness and self-realisation to the human kind. His contributions in the spread of yoga to the wider world helped build a special image of India in the minds of people abroad. This laid the foundations on which the modern day politics is using Yoga as a diplomatic tool to achieve greater goals.

Yoga Diplomacy: Projecting the 'idea of India'

Diplomacy in its traditional sense refers to interactions between governments at various levels. However, with the changing dimensions of global politics there has been a pragmatic shift in how diplomacy is per-

ceived and conducted. Today it is more of a 'people to people' exercise than only bound with institutional settings. It involves both tangible and non-tangible assets which has become a potent tool in India's diplomatic ventures. India, in the past decade, has increased its use of soft power in a more systematic way.Amb (Retd) Manju Seth opines:

> A number of initiatives have been launched to push India to the forefront of the international community, including the creation of a public diplomacy division within the Ministry of External Affairs in 2006, the worldwide expansion of the Indian Council for Cultural Relations (ICCR), the Ministry of Tourism's '*Incredible India*' campaign, and the work of the Ministry for Overseas Indians, 'PravasiBharatiya Divas,' and above all the present Modi government's Yoga diplomacy, are all examples of how institutional public diplomacy has been supplemented by cultural diplomacy and efforts at increasing public knowledge and appreciation of India in foreign countries are underway. (Ministry of External Affairs 2016)

Yoga has been fairly popular across the globe for decades now, but the declaration of International Day of Yoga has consolidated the practice and helped identify it as India's gift to the world. 'Yoga belongs to the global common' is what India is projecting through its Yoga diplomacy. It is a part of the spiritual traditions through which India is projecting the 'idea of India' to the world. In Sanskrit Yoga means 'to unite' translating into a personal search uniting with the self along with the spirit of openness and connectedness with the outer space. It is a way of life, a disciplined way to lead a healthy life. It disciplines the mind through meditation and at the same time aligns the body to the surroundings to achieve inner peace and calmness.

Yoga, being an Indian invention, belongs to the people of the planet; it's a gift of India to the whole humanity and India should take pride in it which it did not till many decades. It is due to the efforts of the present Indian government that Yoga received a more dynamic dimension when on 21st June 2015, International Day of Yoga was celebrated across the globe. Yoga transcended time and space with this diplomatic achievement. Today the aggressive promotion of Yoga is in sync with global power aspiration of India where the role of its soft power is paramount in the globalised world order. India's strength lies in leveraging its abundant soft power regionally as well as globally and in this Yoga perfectly fits in. With leveraging Yoga as a diplomatic tool India is poised to claim the cultural leadership role.

Yoga became a movement across the world due to its great appeal among various sections of the society in the West since middle of twentieth century and later. This trend was forwarded by a number of Yoga gurus who travelled across the globe popularising this stream of knowledge. Great gurus like Paramah-ansa Yogananda, RamanaMaharshi, Sri Aurobindo, Maharishi Mahesh Yogi, Satya Sai Baba, Yogacharya B.K.S.Iyengar, Sri Sri Ravi Shankar, Mata Amritananda-mayi, SadhguruJaggiVasudev, and many others have become popular names in numerous countries with huge following (Frawley 2017). Today it is due to the effort of these gurus that Yoga has gained great admiration and captured people's imagination globally translating into a source of India's soft power and projecting an 'idea of India', abroad. The vast number of Yoga schools in all around the globe is testimony to the popularity of India's rich cultural-spiritual traditions. Yoga not only found space in lives of individuals but also institutions across the spectrum as it is considered a way to keep the body and mind fit and healthy. Thus, Yoga is "open to numerous interpretations. For some, it is a way to be physically fit and healthy; for others a therapy or cure for disease; for others it is a philosophy of life; and still others it is a means of spiritual awakening to attain higher consciousness. The bottom line of all these beliefs is striving for peace and tranquillity" (Singh and Srivastava 2014).

It is under such a backdrop that Prime Minister Modi's global vision about yoga should be looked at. During one of his speeches at the UN General Assembly, he said that Yoga could help to tackle climate change the world is witnessing today. While addressing a recent International Conference of Yoga, he mentioned that Yoga could play a vital role in developing peaceful societies, responsible leaders so that we may leave planet in good conditions for future generations (Mukhi 2015). Even Ban-Ki-moon, the then UN General Secretary, made a public statement endorsing the crucial role of yoga in the well-being of the world population. He was categorical in his statement that "through the celebration of the International Yoga Day, the world will be a 'healthier' place and, more importantly, it will facilitate a more unified existence where people can live in harmony irrespective of their ethnicity, faith, age, gen-der identity or sexual orientation" (Ibid.). Therefore, Yoga has become a strategic cultural export from India promoting and projecting brand India in the minds of people abroad.

Yoga, being more than five thousand years old, has managed to survive the influx of distorting cultural traditions and policies of colonial powers. It has been able to keep the spiritual tradition and cultural legacy alive and intact. But it was never used as a cultural force in diplomatic settings. India neither commanded control over it nor promoted it globally, even when the world was drawn by it heavily. Its mass appeal drew hundreds of thousands of tourists to the Indian shores to learn this ancient art and practice it. India never used its cultural power as a diplomatic tool since independence while it always took pride in its rich and glorious past. India has all the possible ingredients which can make it a cultural powerhouse increasing its sphere of influence globally. The French are considered the best exponents of soft power in global politics while US, China, UK, Japan and South Korea not far behind. India lagged hugely in this realm of public diplomacy which had huge ramifications on its global power aspirations. Today India is correcting on the past lacunas and the present Indian dispensation under the able leadership of Narendra Modi is investing heavily in India's soft power assets by promoting it aggressively. Till now it was the non-state actors mainly who created a brand India but now the state too is actively involved in showcasing the world what India really stands for.

It is, thus, logical for India to not only promote yoga but also protect it from various distortions. In doing so, India needs to actively engage with the Indian diaspora who are a latent force which can be harnessed to leverage Indian culture including Yoga. The wide acceptance of Yoga in the West is an added advantage for the Indian government to play a vital role in guiding the world to the original philosophical tradition of Yoga rather than the distorted versions which are being marketed as commodity in the entire world today. As by sharing the true knowledge and true purpose of yoga which is to achieve peace and harmony India could become the spiritual guru of the world.

Conclusion

Prime Minister Narendra Modi's Yoga Diplomacy, which led to the declaration of International Day of

Yoga, on 21st June of every year, is a welcome break from the existing cultural apathy of previous governments. It scripts a freshand innovative era in Indian diplomatic traditions. It is a sign of 'New India' which not only takes pride in its rich civilisational values but also aggressively promotes it for the achievement of larger goals. Another exceptional attribute of Indian diplomacy under Prime Minister Modi is the sense of responsibility for the global commons. The idea of India has been that of constructive force treating the whole world as one family where all members live in peace and harmony. This philosophical understanding is quite evident when India is using Yoga not only as a diplomatic tool but as a way of life to counter the challenges the world is facing today.

The use of soft power can yield long term tangible outcomes as against hard power. As use of hard power requires less time and can yield instant results at times but the same is not the case with soft power which requires a longer duration of time. Soft power works more on persuasion and appeal, thus changes brought in attitudes and behaviour are voluntary. This means when there is voluntary acceptance the role of governments get diminished and thus governments can no longer stop connection between the two spaces and cultures. As compulsion leads to conflicts and voluntariness to consent, this is why soft power tends to last longer than hard power relations.

It is under such a backdrop that makes it imperative for India to expand its soft power resources leveraging its civilisational strengths for safeguarding and promoting its national interests. The rich and glorious spiritual-cultural legacy shall be used for the benefit of humankind. The secular nature of Yoga and other national cultures provides India with the opportunity to claim the position of *Vishwa Guru*. But for all this India requires the political will and sound diplomatic skills which can foresee a world under the rubric of Indian civilisational values.

Endnotes

- Frawley, David (2017), *India's Soft Power and Cultural Diplomacy: The Role of Yoga and Dharmic Traditions*. Retrieved August 25, 2017, from https://www.indiafoundation.in/indias-soft-power-and-cultural-diplomacy-the-

role-of-yoga-and-dharmic-traditions/

- Gallarotti, G. (2011), "Soft Power: What it is, it's Importance, and the Conditions for its Effective use", *Journal of Political Power*, 4 (1), pp. 25-47.

- Heywood, A. (2011), *Global Politics*, Basingstoke: Palgrave Foundation.

- Lakshman, N. (2016), "'Vasudhaiva Kutumbakam' is India's philosophy: Modi", *The Hindu*. Retrieved May 22, 2017, from http://www.thehindu.com/news-/national-/vasudhaiva-kutumbakam-is-indias-philosophy-modi/-article-64-53-203.ece

- Leonard, M. (2002), *Public Diplomacy*, London: The Foreign Policy Centre.

- Ministry of External Affairs (2016), *Diaspora: A Key Resource for India's Foreign Policy Objectives and Cultural Diplomacy*, Government of India. Retrieved May 31, 2017, from http://www.mea.gov.in/distinguished-lectures-detail.htm?561

- Ministry of Foreign Affairs (2017), *Cultural Diplomacy*, Government of Brazil. Retrieved May 25, 2017, from http://www.itamaraty.gov.br/en/cultural-diplomacy

- Mohanty, J. N. (2014), *Indian philosophy*, 15 September. Retrieved March 25, 2017, from https://-www.britannica.com-/-topic/-Indian-philosophy

- Mukhi, Umesh (2015), *Yoga diplomacy*, Foreign Policy News, 20 July. Retrieved May 25, 2017, from http://foreignpolicynews.org/2015/07/20/yoga-diplomacy/

- Nye, J. S. (1990), "Soft Power", *Foreign Policy*, No. 80, p. 153-171.

- …… (2004), "Soft Power: The Means to Success in World Politics", *Public Affairs*, pp. 111-12.

- …… (2011), *The Future of Power*, New York: Public Affairs.

- Press Information Bureau (2014), *Unity and integrity is strength of our country: Speech by Vice President of India*, Government of India. Retrieved May 25, 2017, from http://pib.nic.in/newsite/-Print-Release.aspx?-relid=17-38-09

- …… (2015), *Speech by Honourable President of India, Shri Pranab Mukherjee at the banquet hosted by the President of Israel*, Government of India, 14 October. Retrieved May 20, 2017, from http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=128743

- Singh, Sonali and Sanjay Srivastava (2014), *Yoga as Indian Soft Power*, 19 December, USC Center on Public Diplomacy. Retrieved April 12, 2017, from
- https://uscpublicdiplomacy.org/blog/yoga-indian-soft-power

- Tharoor, Shashi (2009), *Indian Strategic Power: 'Soft'*, 13 May. Retrieved April 17, 2017, from http://globalbrief.ca/blog/2009/05/13/soft-is-the-word/

- United Nations (2017), *Yoga, yoga day, asana, practice, well-being, union, health, mindfulness,peace*. Retrieved May 23, 2017, from http://www.un.org/en/events/yogaday/

- Wilson, E. J. (2008), "Hard Power, Soft Power, Smart Power", *The ANNALS of the American Academy of Political and Social Science*, Issue 616, pp. 110-124.

www.transframe.in

ISSN 2455-0310